❁ श्रीविश्वनाथो जयति ❁

श्रीगुरुगीता

श्रीभारतधर्ममहामण्डल

लहुराबीर, वाराणसी

❀ श्रीविश्वनाथो जयति ❀

श्रीगुरुगीता

भाषानुवाद-टिप्पणी-सहिता

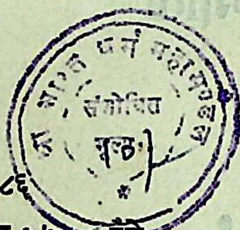
प्रकाशक—

मन्त्री

भारतधर्म महामण्डल

जगतगंज-वाराणसी।

पञ्चमावृत्ति



१९८६

मूल्य : ५.०० पैसे

मुद्रक—

देववाणी प्रेस

स्टेशन रोड, मलदहिया

वाराणसी

❀ श्रीगुरवे नमः ❀

श्रीगुरुगीता

की

विषयानुक्रमणिका

७—महादेवीकी जिज्ञासा

८—महादेवकी आज्ञा

९—महादेवीकी जिज्ञासा

१०—महादेवकी आज्ञा

११—महादेवीकी जिज्ञासा

१२—महादेवकी आज्ञा

१३—महादेवीकी जिज्ञासा



ओं तत्सत्

श्रीगुरुगीता

तृतीयावृत्तिका विज्ञापन

श्रीभारतधर्ममहामण्डल, प्रधान कार्यालय, काशीधामके शास्त्रप्रकाश विभागद्वारा अबतक अप्रकाशित छः गीताओंका हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन होकर हिन्दी साहित्य भण्डार और साथ ही साथ सनातनधर्म ग्रन्थभण्डारकी श्री वृद्धि हुई है। इससे पहले श्रीसंन्यास गीता सबप्रकारके संन्यासी और साधु सम्प्रदायोंकेलिये, सौर्य सम्प्रदायके लिये श्रीसूर्यगीता, वैष्णव सम्प्रदायकेलिये श्रीविष्णुगीता, शाक्तसप्रम्दाय के लिये श्रीशक्ति-गीता, गाणपत्य सम्प्रदायकेलिये श्रीधीशगीता और शैव सम्प्रदाय-केलिये श्रीशम्भुगीता हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित की गयी है। अब यह श्रीगुरुगीता जैसी अबतक प्रकाशित नहीं हुई थी, हिन्दी अनुवाद सहित तृतीयबार प्रकाशित की जाती है।

सर्वव्यापक, सर्वजीवहितकारी और पृथिवीके सब धर्मोंके पितारूप सनातनधर्ममें निर्गुण और सगुण उपासनारूपसे प्रधान दो भेद हैं। यद्यपि लीलाविग्रह अर्थात् अवतार-उपासना, ऋषि देवता पितृ उपासना और क्षुद्र तामसिक शक्तियोंकी उपासना-रूपसे सनातन धर्ममें सब अधिकारके उपासकवृन्दके लिये और भी कई उपासनाशैलियोंका विस्तारित वर्णन पाया जाता है;

परन्तु लीला-विग्रह-उपासना अर्थात् अवतार-उपासना तो पञ्च सगुण उपासनाके अन्तर्गत ही है। श्रीविष्णु भगवान्, श्रीसूर्यभगवान्, श्री भगवती देवी, श्री गणेशभगवान् और श्री सदाशिव भगवान्, इन पञ्च सगुण उपास्य देवताओंमें सबके अवतारों का वर्णन शास्त्रोंमें पाया जाता है; क्योंकि सगुण उपासनाकी पूर्णताका लीलामय स्वरूपके विना उपासक अनुभव नहीं कर सकता। अस्तु, लीलाविग्रहकी उपासना सगुण उपासनाकी पूर्णताकेलिये ही होती है तथा ऋषिदेव पितृ-उपासना और अन्य क्षुद्र उपासनाका अधिकार सकाम राज्यसे ही सम्बन्ध रखता है।

निर्गुण उपासनामें सर्वसाधारणका अधिकार हो ही नहीं सकता। निर्गुण उपासना अरूप भावातीत, वाक् मन और बुद्धिसे अगोचर आत्मस्वरूपकी उपासना है। निर्गुण उपासना केवल आत्मज्ञ ान-प्राप्त तत्वज्ञानी महापुरुषों तथा जीवन्मुक्त संन्यासियोंके लिये ही उपयोगी समझी जा सकती है और केवल सगुण उपासना ही सब श्रेणीके उत्तम उपासक वृन्दकेलिये हितकारी समझकर पूज्यपाद महर्षियोंने उसके सिद्धान्तोंका अधिक प्रचार शास्त्रोंमें किया है। सृष्टिके स्वाभाविक पञ्च तत्वोंके अनुसार पञ्च विभागों पर संयम करके पञ्च उपासक सम्प्रदायके लिये भेद कल्पना करते हुए पूर्वाचार्यों ने पञ्च सगुण उपासनाप्रणाली प्रचलित की है। विष्णु उपासककेलिए वैष्णव-सम्प्रदायप्रणाली, सूर्य उपासकके लिये सौर्य-सम्प्रदाय-प्रणाली, शक्ति उपासकके लिये शाक्तसम्प्रदाय-प्रणाली, गणपति

उपासकके लिये गाणपत्यसम्प्रदाय-प्रणाली और शिव उपासकके लिए शैवसम्प्रदाय-प्रणाली उन्होंने विस्तारित रूपसे नाना शास्त्रोंमें वर्णन की है। प्रत्येक उपासक सम्प्रदायके उपयोगी अनेक आर्षसंहितायें और अनेक तन्त्र ग्रन्थआदि पाये जाते हैं, यहाँ तक कि, प्रत्येक सम्प्रदायके उपयोगी उपनिषद् भी प्राप्त होते हैं। उसी शैलीके अनुसार प्रत्येक सम्प्रदायके उपासकके लिये अपने अपने सम्प्रदायके पंचाङ्ग ग्रन्थोंमेंसे अपने-अपने सम्प्रदायका गीताग्रन्थ सबसे प्रधान माना गया है। विष्णु-सम्प्रदायकी श्रीविष्णुगीता सूर्य सम्प्रदायकी श्रीसूर्यगीता, देवीसम्प्रदायकी श्रीशक्तिगीता, गणपतिसम्प्रदायकी श्रीधीशगीता और शिवसम्प्रदायकी श्रीशम्भुगीता, ये पाँचों ग्रन्थ अति अपूर्व उपनिषद् रूपी हैं। इन पाँचों ग्रन्थरत्नोंका प्रकाशन अभी तक ठीक ठीक नहीं था। यद्यपि देवीगीता और गणेशगीता नामसे कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी हुए हैं, तो वे असम्पूर्ण दशामें प्रकाशित हुए हैं। श्रीभारतधर्म-महामण्डलके शास्त्रप्रकाश विभाग तथा अनुसन्धान विभागद्वारा पाँचों ग्रन्थरत्न अपने सम्पूर्ण आकारमें प्राप्त हुए हैं। ये पाँचों गीतायें वेदविज्ञान, सनातनधर्मके अपूर्व रहस्य, गम्भीर अध्यात्म तत्त्व और पूज्यपाद महर्षियोंके ज्ञानगरिमाके सिद्धान्तसे परिपूर्ण हैं, इन पाँचोंके पाठ करनेसे पाठक बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। निर्गुण ब्रह्मतथा उपासनाका रहस्य, सगुण उपासनाका महत्त्व और विज्ञान, वेदके कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डका मर्म, सनातन धर्मके सब गम्भीर सिद्धान्तोंका निर्णय, अध्यात्मतत्त्व अधिदैवतत्त्व और अधिभूत-तत्त्वका यहाँ तककि वेदसार सब कुछ इन पञ्च गीताओं में प्राप्त होता है। ज्ञानकाण्डका विघ्न जिसप्रकार अहङ्कार है,

उपासनाकाण्डका विघ्न जिस प्रकार साम्प्रदायिक विरोध है, उसी प्रकार कर्मकाण्डका विरोधी दम्भ है। कर्मकाण्डी इनका पाठ करनेसे अपने दम्भको भूलकर भक्त बन जायेंगे, उपासकगण अपने क्षुद्राशय और साम्प्रदायिकविरोधको भुला उदार और पराभक्तिके अधिकारी बन सकेंगे और तत्त्वज्ञानीकेलिये तो ये पाँचों ग्रन्थ उपनिषदोंके साररूप हैं। गृहस्थोंके लिये ये पाँच गीतायें परम मङ्गलकर और सन्यासियोंके लिये अध्यात्मपथ-प्रदर्शक हैं। जिस प्रकार संन्यासगीता प्रधानतः सकल सम्प्रदायके साधुसन्यासियोंके हितार्थ प्रकाशित की गयी; उसी प्रकार यह श्रीगुरुगीता भी सकल प्रकारके साधकोंके हितार्थ प्रकाशित हुई है। इसकेद्वारा चारों आश्रम के साधक वृन्द समानरूपसे लाभ उठावेंगे।

शास्त्रप्रकाश विभागके अन्य ग्रन्थोंकेअनुसार इस ग्रन्थ-समारत्नका सत्त्वाधिकार श्रीभारतधर्म महामण्डलको दिया गया है।

श्री काशी धाम
विजया दशमी
संवत् १९७७ विक्रमी

विवेकानन्द

ॐ

श्रीगुरवे नमः

श्रीगुरुगीताके

पञ्चम संस्करणकी प्रस्तावना

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

सृष्टिके आदि कालसे गुरुदीक्षाकी रीति इस पवित्र भूमिमें प्रचलित है। शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि, जैसे पाषाणपर बीज बोनेसे बीज अंकुरित नहीं होते वैसे ही विना गुरुदीक्षाके साधना करनेसे कदापि आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। थोड़ेसे ही विचार करनेसे शास्त्रोक्त इस महावाक्यकी सार्थकता समझमें आ सकती है। जबसे शिशुमें ज्ञान अंकुरित होता है, उसके अनन्तर जैसे-जैसे उसके ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है, वह वृद्धि औरोंके उपदेशसे ही होती है;

अर्थात् जैसे-जैसे उस शिशुको उसके माता पिता प्रतिपालक वा विद्यागुरुगण उपदेशद्वारा जैसी-जैसी शिक्षा देते जाते हैं, वैसे ही वैसे बालकमें ज्ञानकी स्फूर्त्ति होती जाती है। वे उपदेशकगण उस शिशुके शिक्षागुरु हैं, क्योंकि उन उपदेशोंकी सहायताके बिना उस बालकको किसीप्रकारसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती थी। मन, बुद्धि और इन्द्रिय आदि जबतक किसी प्रबल शक्तिसे उत्तेजित, आकृष्ट वा चालित न किये जायँ, तबतक ये कोई काम नहीं कर सकते। अब जिस शक्तिद्वारा हमलोग उन्नतिकीओर फिराये जाते हैं, वही शक्ति हमारे गुरु हैं। चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्रादि जिन महाशक्तिके इङ्गितमात्रसे अपने कार्यपर लगे रहते हैं, वही जगत्की महाशक्ति जगद्गुरु हैं। इन्हीं जगद्गुरुके जाननेके लिये जब जीवका मन व्याकुल होता है, उस व्याकुलताको दूर करके इस घोर मायामय अन्धकार-पूर्ण संसार-पथको जो तत्त्वज्ञानी महापुरुष उपदेशरूप दीपकद्वारा सुगमकर देते हैं, वही दीक्षागुरु हैं, विचारद्वारा यह प्रतिपन्न हुआ कि, बिना दूसरेके उपदेशके जीव कोई या किसीप्रकारका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता; चाहे सांसारिक ज्ञान हो, चाहे आध्यात्मिक ज्ञान हो, विना गुरु-उपदेशके किसीप्रकारका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

शिक्षाके भेदसे शास्त्रमें दो प्रकारके गुरु लिखे हैं; अर्थात् शिक्षागुरु और दीक्षागुरु। माता, पिता, आचार्य्यादि जो कोई सांसारिक ज्ञानकी वृद्धि करनेमें

सहायता करें, वे शिक्षागुरु हैं; अर्थात् एक कीटसे लेकर समस्त ब्रह्माण्ड ही शिक्षागुरु हो सकता है; परन्तु दीक्षागुरु वे ही तत्त्वदर्शी महापुरुष हो सकते हैं, जिन्होंने जीवकी व्याकुलता देख कृपाकर अत्मोन्नति-का पथ उसको दिखाया हो।

गुरुदीक्षाके अधिकारियोंके सम्बन्धमें वर्णन करते समय आर्य-शास्त्रोंने आज्ञा दी है कि दीक्षासे पहले श्रीगुरुदेव शिष्यकी कम-से-कम छः मास अथवा वर्ष-काल पर्यन्त परीक्षा कर लें और परस्पर प्रीति तथा भक्ति होनेपर यदि गुरुदेव शिष्यों को उपयुक्त ,समझें, तो दीक्षा दें। यह भी लिखा है कि, शास्त्रविधिसे यदि शिष्यकी दीक्षा होगी, तो अवश्य ही उस जिज्ञासु शिष्यका कल्याण होगा; इसमें सन्देह नहीं; परन्तु शास्त्रोंने यह भी आज्ञा दी है कि, श्रीगुरुदेवको शक्तिका पार नहीं; वे यदि इच्छा करें, तो चाहे जैसा अधिकारी हो, चाहे जैसा देशकाल पात्र हो, चाहे शिष्यकी परीक्षा करें वा न करें, वे सब समय, सब देशमें दीक्षाद्वारा शिष्यका कल्याण कर सकते हैं। ग्रन्थोक्त गुरु-लक्षण तथा शिष्य-लक्षणके पढ़नेसे जिज्ञासुगणके हृदयमें प्रश्न उठ सकता है कि, यद्यपि परमज्ञानी श्रीगुरुदेव शिष्यके लक्षणोंकेद्वारा शिष्यको पहचान सकते हैं, परन्तु अल्पज्ञानी शिष्य कैसे सद्गुरुके पहचानमें समर्थ हो सकता है? इसप्रकारके सन्देहोंके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि, यद्यपि शिष्य अल्पज्ञानी होता है,

तथापि ज्ञानरूपी चैतन्यका प्रकाश सब जीवोंमें ही स्थित है, विशेषतः मनुष्योंमें इस प्रकारकी श्रेष्ठता बुद्धिरूपसे प्रकट है। इसीकारण मनुष्य सब जीवोंमें श्रेष्ठ है, वह अपने सत् असत् कर्मोका दायी भी है; चूँकि पशु प्रकृतिके पराधीन हैं; अतः वे अपने किये हुए कर्मोंका फल नहीं पाते। मनुष्य अपने अधीन होकर कार्य करता है। अतः वह अपने किये हुए सत् अथवा असत् कर्मके बन्धनमें पड़ जाता है। यह बुद्धिकी स्वाधीनता सभी मनुष्योंमें सदा न्यूनाधिक रूपसे रहती है। इस कारण शास्त्रने आज्ञा दी है कि, जिज्ञासुको उचित है कि, अपनी बुद्धिकेअनुसार ग्रन्थोक्त लक्षणोंको मिलाकर गुरुका अन्वेषण करे।

जितने प्रकारके धर्म सम्प्रदाय इस संसारमें देखनेमें आते हैं, उन सबमें ही गुरुदीक्षाकी रीति अल्प अथवा अधिक रूपसे पायी जाती है। चाहे मुहम्मदीय धर्मके शरीअत, तरीकत, मारफत और हकीकत अधिकार हों, चाहे ईसाई धर्मके रोमन, कैथलिक, ग्रीकचर्च अथवा प्रोटस्टन्ट सम्प्रदाय हों, चाहे जैनधर्मके श्वेताम्बरी और दिगम्बरीआदि मतान्तर हों, चाहे बौद्धधर्मके उत्तर और दक्षिण आम्नाय हों, सब धर्म-सम्प्रदायोंमें ही गुरुदीक्षा-ग्रहणकी रीति अल्प अथवा अधिकरूपेण प्रचलित है। सब धर्ममार्ग एकवाक्य होकर गुरुदीक्षा-ग्रहण करने की आज्ञा देते हैं; परन्तु भेद इतना ही है कि, अभ्रान्त वेद-प्रकाशित सनातन धर्ममें जिसप्रकार

गुरुकी महिमा और आध्यात्मिक उन्नतिके लिए गुरु-दीक्षाकी आवश्यकताको विस्तृत और वैज्ञानिक रूपसे वर्णन किया गया है; ऐसा वैज्ञानिक भावपूर्ण वर्णन और कहीं देखनेमें नहीं आता। वेदोंका यही सिद्धान्त है कि, जीव अपने कर्मके अनुसार आवागमन चक्रमें सत् असत् फल भोग किया करते हैं, परन्तु कर्म जड़ होनेके कारण स्वयं फलकी उत्पत्ति नहीं कर सकते। जगत्कर्त्ता, जगत्पिता, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही अपनी महाशक्तिकेद्वारा कर्मोंके अनुसार जीवको शुभ और अशुभ फल प्रदान किया करते हैं। यद्यपि फलकी प्राप्तिमें अपने कर्म ही कारण हैं, तथापि ईश्वर-शक्तिके बिना कर्म-समूह अपने फल उत्पन्न नहीं कर सकते। इस सिद्धान्तके अनुसार आध्यात्मिक उन्नतिकेलिये भी मनुष्यकी ईश्वरीय शक्तिकी सहायता लेनी पड़ती है। परन्तु ईश्वर स्वयं मूर्तिमान् होकर जीवको फलदान नहीं किया करते, जिसप्रकार अप्रत्यक्ष रूपसे जगत्-पिता परमात्मा जगत्के सारे कार्य संचालित करते हैं; उसी-प्रकार वे अपने जीवरूप अनन्त केन्द्रोंमेंसे किसी श्रेष्ठ पुरुष स्त्री केन्द्रके माध्यमसे अर्थात् गुरुरूपसे जिज्ञासुका कल्याण करते हैं। वे उसको निम्नतर आध्यात्मिक भूमिसे उच्चतर आध्यात्मिक भूमिमें पहुँचा दिया करते हैं। इस महाकार्य्यमें, इस जीव-हितकारी प्रधान कर्ममें ईश्वर कारण और श्रीगुरुदेव कार्य-रूप हैं, इसमें सन्देह नहीं।

यद्यपि गुरुदीक्षाकी रीति प्राचीन भारतमें प्राचीन कालसे ही वहुत ही प्रचलित थी, तथापि अब भी इस-पवित्र भूमिमें गुरुदीक्षाकी यथार्थ रीति स्वल्परूपेण प्रचलित है; किन्तु विशेषतः यह रीति लुप्त हो गयी है और कहीं कहीं यह पवित्र रीति स्वार्थ-परतामें मिलकर कुरीतिमें परिणत हो गयी है। अधिकतर ऐसा ही देखनेमें आता है कि, शिष्यमें गुरुभक्ति कुछ भी नहीं रही, गृहस्थोंमें जैसे नाई, धोबी आदि गृहस्थ-सेवक हुआ करते हैं, वैसे ही गुरु भी एक समझे जाते हैं; जव कभी गुरुवंशके कोई आ जाते हैं, तव उनकी वर्त-मान हीन अवस्थाके अनुसार यत्किञ्चित् कुछ देकर उनको विदा कर देते हैं और उनसे पुनः अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखते अथवा उनको अपने घर में रखकर उनसे गृहस्थ-सेवकोंका कार्य लिया करते हैं। यद्यपि अधिक दोष इस समय शिष्योंका ही है, क्योंकि वे न तो अपने आप आध्यात्मिक उन्नतिकेलिये प्रयत्न करते हैं और न गुरुसेवाकी कुछ आवश्यकता समझते हैं; तथापि इस समयके शिष्योंका ही केवल दोष नहीं कहा जा सकता, गुरुगणने भी अपनी मर्यादाको त्याग दिया है और दीक्षा देना उदरपूर्ति करनेका एक व्यव-साय मान लिया है। कहीं कहीं यह स्वार्थपरता इतनी बढ़ गयी है कि, प्रतिष्ठित गुरुवंशके निकट जब शिष्य-गण दीक्षाकेलिये एकत्रित होते हैं, तो उन सबोंको पशुदलकी तरह एकसङ्ग बिठाकर और सबोंको एक ही

मन्त्र सुनाकर उनसे अपना वात्सरिक 'कर' ठहराकर उनको विदा कर देते हैं। इसीप्रकार अज्ञानताके कारण गुरु और शिष्य दोनोंमें यह घोर कुरीति घरकर चुकी है।

इस कराल कालका प्रभाव लक्षित करके देवाधिदेव श्री महादेवजीने श्रीपार्वतीजीसे कहा था कि—

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
दुर्लभस्सद्गुरुर्देवि ! शिष्यसन्तापहारकः॥

हे देवि ! कलियुगमें शिष्यका धन हरणकरनेवाले गुरु बहुत होंगे, परन्तु शिष्यके सन्तापहारी गुरु दुर्लभ हैं। आर्यजातिकी वर्तमान अवस्था कुछ भी हो, परन्तु विचारवान् पुरुषोंका यह विश्वास है कि, यदि शिष्य अपने आपको उपयुक्त कर लें और त्रितापके नाश करनेको इच्छा उनमें प्रबल हो, तो निःसन्देह उनको सद्गुरुके दर्शन होंगे। जब यह स्थिर सिद्धान्त है कि, श्रीगुरुदेव श्रीभगवान् ही हैं, तब गुरुदीक्षाद्वारा कल्याण प्राप्तिके विषयमें कोई सन्देह ही नहीं हो सकता; परन्तु भेद इतना ही है कि, शिष्य जैसा अधिकारी होगा, उसी अधिकारका गुरु-उपदेश उसको प्राप्त होगा। शिष्यमें

जितना संसारके विषयोंसे वैराग्य होगा और वह जिस आध्यात्मिक भूमिमें स्थिर होगा, उतनी ही उपकारिता गुरु-उपदेशद्वारा उसको प्राप्त होगी। यदि शिष्य अपने आपको पहले अधिकारी बनाकर जिज्ञासु बने, तदनन्तर सद्गुरुका अन्वेषण करे, तो ईश्वरभाव-पूर्ण इस विस्तृत संसारमें उसको सद्गुरुके अवश्य दर्शन होंगे, इसमें सन्देह नहीं।

गुरुदीक्षाकी आवश्यकताके विषयमें वेद तथा वेद-सम्मत दर्शन, उपवेद, स्मृति, पुराण और तन्त्रआदि सभी शास्त्र एकवाक्य होकर कहते हैं, सभी श्रुति तथा महर्षि-वाक्योंका यही सिद्धान्त है कि, आध्यात्मिक उन्नतिके इच्छुक जिज्ञासुका बिना गुरुदीक्षाके कदापि कल्याण नहीं हो सकता। जितनेप्रकारके सम्प्रदाय सनातन धर्ममें हैं, वे सभी ही प्रथम गुरुदीक्षा-ग्रहण करनेकी आवश्यकता मानते हैं; चाहे भक्ति-मार्ग हो, चाहे ज्ञानमार्ग हो, चाहे कर्म-मार्ग हो, सभी मार्ग और सब सम्प्रदाय एकवाक्य होकर स्वीकार करते हैं कि, प्रथम गुरुदीक्षा ग्रहण करके तत्पश्चात् साधनामें प्रवृत्त होना उचित है। वैष्णव, सौर्य, शाक्त, गाणपत्य तथा शैव, सभी उपासक सम्प्रदाय स्थिर निश्चय

करके यही उपदेश हैं कि, विना गुरुदीक्षाके सभी साधन विफल होते हैं। उसी प्रकार मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग, इन योग चतुष्टयके सभी आचार्योंने मुक्तकण्ठसे यही कहा है कि, विना गुरुदीक्षाग्रहण, विना गुरुसेवा, विना गुरु-सङ्ग, विना गुरु-आज्ञापालन और विना गुरु उपदेशके कोई मुमुक्षु अपना कल्याण नहीं कर सकता है। प्रथम गुरुसेवा, तत्पश्चात् गुरुकृपा, तत्पश्चात् साधन-अभ्यास, क्रमशः इसी शैलीके अनुसार जिज्ञासु आध्यात्मिक भूमिमें अग्रसर होता हुआ परम कल्याणरूपी मुक्तिपदको प्राप्तकर लेता है। मुमुक्षुकी आध्यात्मिक उन्नतिमें सद्गुरुकी ही प्रधानता है। गुरुगीतासे मोक्ष पदके पथिक साधकोंको गुरुके लक्षण, शिष्यके लक्षण तथा गुरुके साथ शिष्यका बर्ताव कैसा होना चाहिये आदि आवश्यक विषयोंका भली-भाँति ज्ञान प्राप्त होगा तथा उनका गंतव्य पथ सरल होगा, इसी उद्देश्यसे श्री भारत धर्म महा-मण्डलके प्रतिष्ठाता भगवत्पूज्यपाद महर्षि श्री १००८ स्वामी ज्ञानानन्द महाराज प्रभुने गुरुगीताको प्रकाशित कराया था। इसकी तृतीयावृत्ति बहुत वर्ष पहले ही समाप्त हो गयी थी। अब इसका यह पंचम संस्करण श्रीभारत धर्म महामण्डलके

शास्त्र-प्रकाश-विभागद्वारा प्रकाशित किया जाता है। आशा है—इससे परमार्थ पथके पथिक मुंमुक्षुगण समुचित लाभ उठायेंगे।

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।
शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः ॥

विदुषां वशंवद—

कार्तिक पूर्णिमा
सं० २०४३

परमहंस मिश्र
श्री भारत धर्म महामंडल
जगतगंज, वाराणसी

ॐश्री गुरवे नमः

श्रीगुरुगीता

भाषानुवादटिप्पणीसहिता

ऋषय ऊचुः

गुह्याद् गुह्यतरा विद्या गुरुगीता विशेषतः ।
ब्रूहि नः सूत! कृपया शृणुमस्त्वत्प्रसादतः ॥१॥

ऋषियोंने कहा—

हे सूत! धर्म दुर्ज्ञेय है, विशेषतः गुरुगीताविद्या सब विद्याओंसे अतिदुर्ज्ञेय है, आपकी कृपासे हम उसे श्रवण करना चाहते हैं, इस कारण उसका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

टिप्पणी—तीर्थं प्रधान नैमिषारण्य तीर्थमें महर्षिगण प्रायः ही एकत्रित होकर धर्म-जिज्ञासा, धर्म-विचार और जीवगणोंके हितार्थं धर्मप्रचार किया करते थे। इस प्रसङ्गसे गुरुगीताका भी प्रचार हुआ। गुरु विना किसी प्रकारके ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती। श्रीगुरुदेवसे अधिक इस संसारमें कोई भी नहीं है। इस कारण महर्षिगणने ऐसे सम्मानित और प्रशंसायुक्त वाक्यों-द्वारा सूतसे गुरुगीता विषयक प्रश्न किया ॥ १ ॥

सूत उवाच

गिरीन्द्रशिखरे रम्ये नानारत्नोपशोभिते ।
नानावृक्षलताकीर्णे नानापक्षिवरैर्युते ।।२।।
सर्वर्त्तुकुसुमामोदमोदिते सुमनोहरे ।
शैत्यसौगन्ध्यमान्द्याढ्यमरुद्भिरुपवीजिते ।।३।।

सूत बोले

कैलास पर्वतका शिखर अतिरमणीय स्थान है। वह स्थान नाना मणियों रत्नों आदिसे युक्त होकर अपूर्व शोभाको धारण करता है; बहुत प्रकारके वृक्षों और लतासमूहसे वह वेष्टित है; जिनमें अगणित विहङ्गमगण गान किया करते हैं। ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त इन छःहों ऋतुओंमें जिस-जिस प्रकारके उत्तम पुष्प खिला करते हैं, वे सब ही इस मनोहर

टिप्पणी—महामाया उमाके पति, प्रकृति जयकारी सदाशिवके कैलास लोकमें प्रकृतिमाता सदा पूर्णताको धारण करके उनकी सेवा करेगी यह निश्चय ही है। जिन देवादिदेव महादेव ने अपने तपःप्रभावसे त्रिलोकमुग्धकारी कामको सदा जय कर रखा है, उनके लोकमें काम-सेवक ऋतुगण सदा आज्ञाकारी रहेंगे, इसमें आश्चर्य हो ही नहीं सकता। तरलतरङ्गिणी पतितपावनी गङ्गा सदा एक ही भावसे कैलास पर्वतमें पतिके

अप्सरोगणसङ्गीतकलध्वनिनिनादिते ।
स्थिरच्छायाद्रुमच्छायाच्छादिते स्निग्धमञ्जुले ॥४॥

पर्वतमें सब समय प्रस्फुटित होकर मनः आनन्दकारी सुगन्धिका विस्तार किया करते हैं; मन्द सुगन्ध और शीतल गुणधारी बसन्त पवन सदा प्रवाहित होकर व्यजनकारीका कार्य किया करता है ॥ २-३ ॥

ऐसी अपूर्व भूमिको पाकर अप्सरा और गन्धर्वगण सदा गान, वाद्य और नृत्यरूपी त्रिविद्यामें उन्मत्त रहते हैं, और उस मधुर सङ्गीतकी ध्वनि प्रतिध्वनिसे वह पर्वत निनादित होता रहता है। उस स्थानकी वह स्वर्गीय वृक्ष-छाया सदा स्थिर भावसे रहती है, अर्थात् छओं ऋतुओंके परिवर्तनसे वृक्ष-पत्रोंके परिवर्तित होनेपर जैसे और वृक्षोंमें छायाकी न्यूनता हो जाती हैं; यहाँ वैसा नहीं होता, इस कारण ऐसी स्थिर छाया-युक्त वृक्षोंकी

आनन्द-वर्द्धनार्थं बह रही है, इसकारण वहाँकी वायु शीतल है, उस पवित्र सुरनदीके अपूर्व प्रभावसे उसके तटपर नाना प्रकारके स्वर्गीय कनक चम्पक पारिजात आदि और जलमें कनकपद्म और रजतकुमुद आदि दिव्य पुष्प नित्य विकसित रहते हैं, इस कारण वहाँकी वायु सुगन्धियुक्त है; और उस देवनदीके दोनों तीरपर उनकी अद्भुत शक्तिके कारण नाना प्रकारके देवदारु तथा मन्दार, चन्दन, कल्पवृक्ष आदि रहनेके कारण, उनके मध्यमें वायु बहती हुई स्वतः ही मन्दगुणको धारण कर लेती है ॥ २–३ ॥

मत्तकोकिल - संदोह - संघुष्ट - विपिनान्तरे ।
सर्वदा स्वगणैः सार्द्धमृतुराजनिषेविते ॥
सिद्ध - चारण - गन्धर्व - गाणपत्यगणैर्वृते ॥५॥
तत्र मौनधरं देवं चराचरजगद्गुरुम् ।
सदाशिवं सदानन्दं करुणाऽमृतसागरम् ॥६॥
कर्पूरकुन्दधवलं शुद्धतत्त्वमयं विभुम् ।
दिगम्बरं दीननाथं योगीन्द्रं योगिवल्लभम् ॥७॥

छायासे वह स्थान सदा सुन्दर और शीतल हो रहा है। ऐसे सुन्दर भावको देखकर वहाँ कोकिल सदा प्रमत्त होकर पंचम निनाद करता हुआ विहरण करता है। वहाँ सब समय ऋतुओंका राजा वसन्त अपने अनुचरगणको साथ लेकर विराजमान रहता है और वहाँ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, गाणपत्यआदि शिवसेवकगण सदा निवास किया करते हैं॥ ४-५ ॥

वहाँ एक दिन आशुतोष नित्यानन्दमय चराचर विश्वके एकमात्र गुरु श्रीमहादेव मौनभाव धारण करके बैठे हुए हैं। वे करुणारूप अमृतके सागर, स्वर्गमर्त्य-पाताल इन तीनों लोकोंके अधीश्वर, शुद्ध आत्मज्ञानमय, दीनजनोंके पवित्रकर्त्ता, नित्य मंगलदाता, सब जीवोंमें समान दृष्टि रखनेवाले, योगिगणमें श्रेष्ठ

गङ्गाशीकरसंसिक्त - जटामण्डलमण्डितम् ।
विभूतिभूषितं शान्तं व्यालमालं कपालिनम् ॥८॥
अन्धकारिं त्रिलोकेशं त्रिशूलवरधारकम् ।
आशुतोषं ज्ञानमयं कैवल्यफलदायकम् ॥९॥
निर्विकल्पं निरातङ्कं निर्विशेषं निरञ्जनम् ।
सर्वेषां हितकर्त्तारं देवदेवं निरामयम् ॥१०॥
कैलासशिखरासीनं पञ्चवक्त्रं सुभूषितम् ।
सर्वात्मनाविष्टचित्तं गिरिजामुखपङ्कजे ॥११॥

और योगीगणके परमप्रिय प्रभु हैं। उनका शरीर कर्पूर, स्फटिक और कुन्दपुष्पके समान लावण्ययुक्त है, जिसपर भस्मसे भूषित होकर और भी शोभाको प्राप्त हुआ है, वे दिगम्बर अर्थात् वस्त्र आभरण रहित हैं। उनके मस्तकमें जटायें लटपटाय रही हैं, जिनमें होकर गंगादेवी अपनी लहर विस्तार कर रही हैं, उनके गलेमें सर्पकी माला शोभायमान है, मस्तकमें अर्धचन्द्रकी ज्वाला झलक रही है, उनके हाथमें श्रेष्ठ त्रिशूल शोभाको प्राप्त हो रहा है। उस समय जीवोंके मुक्तिदाता, निर्विकल्प, भयहारी, निरञ्जन, सबके हित करनेवाले, देवादिदेव पञ्चानन कैलास पर्वतको शोभित

प्रणम्य परया भक्त्या कृताञ्जलिपुटा सती ।
प्रसन्नवदनं वीक्ष्य लोकानां हितकाम्यया ।
विनयाऽवनता देवी पार्वती शिवमब्रवीत् ॥१२॥

श्री महादेव्युवाच

नमस्ते देवदेवेश ! सदाशिव ! जगद्गुरो ! ।
प्राणेश्वर ! महादेव ! गुरुगीतां वद प्रभो ! ॥१३॥
केन मार्गेण भोः स्वामिन् ! देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
त्वं कृपां कुरु मे देव ! नमामि चरणं तव ॥१४॥

करते हुए महामाया गिरिजाके मुख कमलकीओर प्रेम-वशीभूत और अनन्यचित्त होकर देखने लगे। तब विद्यारूपिणी उमादेवी परम भक्तियुक्त होकर जीवों के मङ्गलार्थ हाथ जोड़कर विनयके साथ हास्यवदन हो बोलीं ॥ ६-१२ ॥

श्रीमहादेवी बोलीं

हे देवदेवेश ! हे सदाशिव ! हे जगद्गुरो ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ, हे प्राणेश्वर ! हे महादेव ! मुझको गुरुगीता सुनाइये ! हे स्वामिन् ! जीव कौन उपाय अवलम्बन करनेसे ब्रह्मपदको प्राप्त कर सकता है ? सो कृपा करके मुझसे कहिये। हे देव ! मैं तुम्हारे चरणोंमें वारम्वार नमस्कार करती हूँ ॥ १३-१४ ॥

श्री महादेव उवाच

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥१५॥
गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः ।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्तिविमोचकः ॥१६॥
गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः ।
उकारः शम्भुरित्युक्तस्त्रितयाऽऽत्मा गुरुः स्मृतः ॥१७॥ ❀

श्रीमहादेव बोले

गु शब्दका अर्थ अन्धकार और रु शब्दका अर्थ तमका नाश करना है। इस कारण जो अज्ञानरूप अन्धकारको नाश करते हैं, वे ही गुरु शब्दवाच्य हैं ॥ १५ ॥ गुरु इस शब्दके प्रथम वर्ण गु से माया आदि गुण प्रकाशित होता है और द्वितीय वर्ण रुसे ब्रह्ममें जो मायाका भ्रम है, उसका नाश होता है, इस कारण गु शब्द सगुणको और रु शब्द निर्गुण अवस्थाको प्रतिपन्न करके गुरु शब्द बना है ॥ १६ ॥ गकार का अर्थ सिद्धिदाता, रकारका अर्थ पापहर्त्ता और उकारका अर्थ शिव है। अर्थात् सिद्धिदाता शिव और पापहर्त्ता शिव ऐसा अर्थ ग-उ और र-उ बोधक गुरुशब्दसे समझना उचित है ॥ १७ ॥

❀ गुरु शब्दसे जगद्गुरु परमात्मा ईश्वरका ही बोध होता है, गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही इस संसारके सृष्टि, स्थिति और

श्रीमहादेव्युवाच

मायामोहितजीवानां जन्ममृत्युजरादितः ।
रक्षायै कः प्रभवति स्वामिन् ! संसारसागरे ॥१८॥
त्वत्तो नाऽन्यो दयासिन्धो ! कश्चिच्छक्नोति वै प्रभो !
दातुं प्रतिवचश्चास्य लोकशोकविमोचनम् ॥१९॥

श्रीमहादेवी बोलीं

हे नाथ ! मायामोहित जीवको जन्म मृत्युआदिसे बचाने केलिये इस संसारमें कौन समर्थ है ? ॥ १८ ॥ हे कृपामय ! आपके बिना और कोई भी इस लोकशोक-विमोचन प्रश्नका उत्तर देनेवाला नहीं है ॥ १९॥ त्रितापतापित जीवोंके कल्याणार्थ मेरे इस सविनय प्रश्नका उत्तर देकर मुझे आनन्दित करें ॥ २० ॥

लयकर्त्ता हैं; वे ही जीवपर कृपालु होकर जीवकी बुद्धिमें अपनी शक्ति विस्तारितकर जीवको निम्न ज्ञान–भूमिसे उन्नत ज्ञान–भूमिमे पहुँचा दिया करते हैं, वे दयामय ही गुरु-मूर्ति धारणकर शिष्यको निम्न भूमिसे उन्नत भूमिमें खींचकर चढ़ा लेते हैं, तब ही लघुशक्ति जीव गुरुशक्तिद्वारा आकृष्ट होकर ज्ञानभूमिमें उन्नतपदको प्राप्त हो जाता है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही जीवको उसकेलिये सत् असत् कर्मोंका फल दिया करते हैं। मायालिप्त जीव जो कुछ फल भोगता है, वह मायातीत परमेश्वरका विधान किया हुआ ही भोगता है; परन्तु मायालिप्त

त्रितापतप्तजीवानां कल्याणार्थं मया प्रभो ! ।
विहितः सादरं प्रश्न उत्तरेणाऽनुगृह्यताम् ॥२०॥

श्री महादेव उवाच

संसारापारपाथोधेः पारं गन्तुं महेश्वरी ! ।
श्रीगुरोश्चरणाऽम्भोजनौकैवैकाऽवलम्बनम् ॥२१॥

श्रीमहादेव बोले

संसाररूप अपार पारावारसे पार करनेके लिये श्रीगुरुदेवकी चरणकमलरूप नौका ही एकमात्र उपाय है ॥ २१ ॥
मैं ही गुरुरूपसे दृश्य-रूपमें प्रकट होकर जीवोंका उद्धार

होनेके कारण जीव ईश्वरके ऐसे कार्यको प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। वे भी जो कुछ करते हैं, यथावत् ही करते हैं, किन्तु परोक्ष करते हैं; उसी रीतिके अनुसार जीवको सद्गति दान करते समय आप ही अपने और किसी जीव रूप केन्द्रमें आविर्भूत होकर श्रीगुरु रूपसे जीवका कल्याण किया करते हैं। इस कारण श्रीगुरु ही मूर्त्तिमान् परब्रह्म हैं, इसमें सन्देह नहीं। वे पापहर्ता, सिद्धिदाता, मुक्तकर्त्ता, दयामय, शिवरूप ईश्वर ही शरीरमें आविर्भूत होकर श्रीगुरुदेव रूपसे जीवके पापोंका नाश करके दीक्षादानद्वारा उसको उन्नत ज्ञानभूमिमें पहुँचाकर उस बन्धन-प्राप्त जीवकी मुक्तिपदप्राप्तिका उपाय विधानकर देते हैं। श्रीगुरुदेव ही साक्षात् ईश्वर और गुरुदीक्षा ही उनकी महाशक्ति है।

सद्गुरो रूपमादाय जगत्यामहमेव हि ।
उद्धराम्यखिलाञ्जीवान्मृत्युसंसारसागरात् ॥२२॥

यो गुरुः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स गुरुर्मतः ।
गुरौ मयि न भेदोऽस्ति भेदस्तत्र निरर्थकः ॥२३॥

गुरुर्ज्ञानप्रदो नित्यं परमाऽऽनन्दसागरे ।
उन्मज्जयति जीवान्सस्ताँस्तथैव निमज्जयन् ॥२४॥

गुरुस्त्रितापतप्तानां जीवाना रक्षिता क्षितौ ।
सच्चिदानन्दरूपं हि गुरुर्ब्रह्म न संशय ॥२५॥

यादृगस्तीह सम्बन्धो ब्रह्माण्डस्येश्वरेण वै ।
तथा क्रियाऽऽख्ययोगस्य सम्बन्धो गुरुणा सह ॥२६॥

संसारपारावारसे किया करता हूँ ॥ २२ ॥ जो गुरु हैं, वे साक्षात् शिव हैं और जो शिव हैं, वे साक्षात् गुरु हैं, गुरुमें और मुझमें भेद नहीं है ॥२३॥ गुरु ज्ञानदाता हैं, गुरु परमानन्दपारावारमें उन्मज्जन निमज्जन करानेवाले और गुरु त्रितापसे जीवको बचानेवाले हैं। इसी कारण गुरु सच्चिदानन्दमय ब्रह्म हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥२४-२५॥ ईश्वर के साथ जैसा ब्रह्माण्डका सम्बन्ध है, उसीप्रकार गुरुकेसाथ क्रिया योगका सम्बन्ध है ॥२६॥ दीक्षाविधिमें ईश्वर कारणस्थल और गुरु कार्यस्थल कहे गये हैं, इस कारण गुरु ब्रह्मरूप हैं ॥ २७॥

दीक्षाविधावीश्वरो वै कारणस्थलमुच्यते ।
गुरुः कार्यस्थलञ्चाऽतो गुरुर्ब्रह्म प्रगीयते ॥२७॥

गुरौ मानुषबुद्धिन्तु मन्त्रे चाक्षरभावनाम् ।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्व्वाणो नरकं व्रजेत् ॥२८॥

जन्महेतू हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः ।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्म्माऽधर्म्मप्रदर्शकः ॥२९॥

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः ।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥३०॥

जो लोग गुरुके विषयमें मनुष्यबुद्धि, मन्त्रके विषयमें अक्षर-बुद्धि और देवप्रतिमामें पाषाणबुद्धि रखते हैं, वे नरकगामी होते हैं ॥२५॥ माता और पिता जन्म देनेके कारण पूजनीय हैं किन्तु गुरु धर्म और अधर्मका ज्ञान करानेवाले हैं । इस-कारण उनका पूजन पितृगणसे भी अधिक यत्न करके करना उचित है ॥२९॥ गुरु ही पिता हैं, गुरु ही माता हैं, गुरु ही देवता हैं, गुरु ही सद्गतिरूप हैं । परमेश्वरके रुष्ट होने पर तो गुरु बचानेवाले हैं परन्तु गुरुके अप्रसन्न होनेपर कोई भी त्राणदाता नहीं है ॥ ३० ॥

श्रीमहादेव्युवाच

जगन्मङ्गलकृन्नाथ ! विशेषेणोपदिश्यताम् ।
लक्षणं सद्गुरोर्येन सम्यग्ज्ञातं भवेद्ध्रुवम् ॥३१॥
आचार्यगुरुभेदोऽपि येन स्याद्विदितो मम ।
श्रेष्ठत्वं वा तयोः केन लक्षणेनानुमीयते ॥३२॥

श्रीमहादेव उवाच

सर्व्वशास्त्रपरो दक्षः सर्व्वशास्त्रार्थवित्सदा ।
सुवचाः सुन्दरः स्वंगः कुलीनः शुभदर्शनः ॥३३॥

श्रीमहादेवी बोलीं

हे नाथ ! हे सर्व्वशक्तिमन् ! हे सर्व्वज्ञ ! आप जगत्के कल्याणार्थ मुझे ऐसे उपदेश दीजिये, जिससे मैं श्रेष्ठ गुरुके लक्षण समझ सकूं ॥ ३१ ॥ और जिससे मैं यह भी समझ सकूं कि, गुरु और आचार्यमें भेद क्या है और श्रेष्ठ गुरु तथा श्रेष्ठ आचार्य्य किन लक्षणोंसे पहचाने जा सकते है ॥ ३२ ॥

श्रीमहादेव बोले

सर्व्वशास्त्रोंमें पारङ्गत, चतुर, सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता और मधुर वाक्य भाषण करनेवाले, सब अङ्गोंसे पूर्ण और सुन्दर, कुलीन अर्थात् सत्कुलोद्भव और दर्शन करनेमें मङ्गल-मूर्त्ति हों ॥ ३३ ॥ इन्द्रियाँ जिनकी सब अपने वशीभूत हों,

जितेन्द्रियस्सत्यवादी ब्राह्मणश्शान्तमानसः ।
मातृपितृहिते युक्तः सर्व्वकर्म्मपरायणः ॥३४॥
आश्रमी देशवासी च गुरुरेवं विधीयते ।
आचार्य्यगुरुशब्दौ द्वौ क्वचित्पर्य्यायवाचकौ ॥३५॥
एवमर्थगतो भेदो भवत्यपि तयोः क्वचित् ।
उपनीय ददद्वेदमाचार्य्यः स उदाहृतः ॥३६॥
यः साधनप्रकर्षार्थं दीक्षयेत्स गुरुः स्मृतः ।
औपपत्तिकमंशन्तु धर्म्मशास्त्रस्य पण्डितः ॥३७॥

सर्वदा सत्यभाषण करनेवाले हों, ब्राह्मणवर्ण हों, शान्तमानस अर्थात् जिनका मन कभी चञ्चल नहीं होता हो, माता पिता-के समान हित करनेवाले हों, सम्पूर्ण कर्म्मोंके अनुष्ठानशील हों ॥ ३४ ॥ गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचर्य्य और संन्यास, इन आश्रमोंमें से किसी आश्रमके हों एवं भारतवर्षनिवासी हों, इस प्रकारके सर्वगुणसम्पन्न महात्मा गुरु करने योग्य कहे गये हैं। आचार्य्य और गुरु ये दोनों कहीं-कहीं पर्य्यायवाचक शब्द हैं ॥ ३५ ॥ तथा कार्य्यके वैलक्षण्यसे कभी-कभी आचार्य्य और गुरु इनमें भेद भी है। उपनयन कराकर जो शिष्यको वेदका उपदेश करते हैं, वे आचार्य्य हैं ॥ ३६ ॥ और आध्या-त्मिक उन्नतिके लिये जो शिष्यको शिक्षा देते हैं, सम्पूर्ण

व्याचष्टे धर्मामिच्छूनां स आचार्य्यः प्रकीर्तितः।
सर्व्वदर्शी तु यः साधुर्मुमुक्षूणां हिताय वै ॥३८॥
व्याख्याय धर्मशास्त्राणां क्रियासिद्धिप्रबोधकम्।
उपासनाविधेः सम्यगीश्वरस्य परात्मनः ॥३९॥
भेदान्प्रशास्ति धर्म्मज्ञः स गुरुः समुदाहृतः।
सप्तानां ज्ञानभूमीनां शास्त्रोक्तानां विशेषतः ॥४०॥
प्रभेदान् यो विजानाति निगमस्याऽऽगमस्य च।
ज्ञानस्य चाधिकारांस्त्रीन्भावतात्पर्य्यलक्ष्यतः ॥४१॥
तन्त्रेषु च पुराणेषु भाषायास्त्रिविधां स्मृतिम्।
सम्यग्भेदैर्विजानाति भाषातत्त्वविशारदः ॥४२॥

वेद और शास्त्र आदिमें सुपण्डित हों और उनका औपपत्तिक ज्ञान शिष्यको करावें, वे आचार्य्य कहलाते हैं। जो सर्वदर्शी साधु मुमुक्षुओंके हितार्थ वेदशास्त्रोक्त क्रियासिद्धांत और परमेश्वरकी उपासनाके भेदोंको यथाधिकार शिष्योंको बतलावें, उनको गुरु कहते हैं। दर्शनशास्त्रोंकी सात भूमिके अनुसार जो वेद और शास्त्रके सकल भेदोंको जानते हों, अध्यात्म अधिदैव एवं अधिभूत नामक भावत्रयको भलीभांति समझते हों और तन्त्र एवं पुराणोंकी समाधिभाषा, लौकिकभाषा और परकीयभाषा, इनसे भलीभाँति परिचित रहकर लोकशिक्षामें निपुण हों, वे ही श्रेष्ठ आचार्य्य कहे

निपुणो लोकशिक्षयां श्रेष्ठाऽऽचार्य्यः स उच्यते।
पञ्चतत्त्वविभेदज्ञः पञ्चभेदां विशेषतः ॥४३॥
सगुणोपासनां यस्तु सम्यग्जानाति कोविदः।
चातुर्विंध्येन विततां ब्रह्मणः समुपासनाम् ॥४४॥
गम्भीरार्थं विजानीते बुधो निर्म्मलमानसः।
सर्वकार्येषु निपुणो जीवन्मुक्तस्त्रितापहृत्।
करोति जीवकल्याणं गुरुः श्रेष्ठः स कथ्यते ॥४५॥

श्रीमहादेव्युवाच

सच्छिष्यलक्षणं नाथ ! मुमुक्षूणां त्रितापहृत् !।
गुरुभक्तस्य शिष्यस्य कर्त्तव्यञ्चापि मे वद ॥४६॥

जाते हैं। पञ्चतत्वके अनुसार जो महापुरुष विष्णूपासना, सूर्य्योपासना, शक्त्युपासना, गणेशोपासना और शिवोपासना-रूप पञ्च सगुण उपासनाके रहस्योंको पूर्ण समझते हों और जो योगिराज मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, इन चारोंकेअनुसार चतुर्विध उपासनाको जानते हों ऐसे ज्ञानी, निर्म्मलमानस, सर्व्वकार्य्यमें निपुण, त्रितापरहित, जीवोंका कल्याण करनेवाले जीवन्मुक्त महात्मा श्रेष्ठ गुरु कहलाते हैं॥ ३७-४५ ॥

श्रीमहादेवी बोलीं

हे नाथ ! हे मुमुक्षुओंके त्रिताप दूर करनेवाले ! मुझे आप कृपा करके कहें कि, श्रेष्ठ शिष्यके लक्षण क्या हैं और

मुमुक्षुभिश्च शिष्यैः कैः शुभाऽऽचारैरवाप्यते ।
आत्मज्ञानं दयासिन्धो ! कृपया ब्रूहि तानपि ॥४७॥
येन ज्ञानेन लब्धेन शुभाऽऽचारान्वितैर्द्रुतम् ।
मुच्यते बन्धनान्नाथ ! शिष्यैः सद्गुरुसेवकैः ॥४८॥

श्रीमहादेव उवाच

शिष्यः कुलीनः शुद्धाऽऽत्मा पुरुषार्थपरायणः ।
अधीतवेदः कुशलो दूरमुक्तमनोभवः ।
हितैषी प्राणिनां नित्यमास्तिकस्त्यक्तवञ्चनः ॥४९॥
स्वधर्म्मनिरतो भक्त्या पितृमातृहिते स्थितः ।
गुरुशुश्रूषणरतो वाङ्मनः-कायकर्म्मभिः ॥५०॥

गुरुभक्त शिष्यका कर्त्तव्य क्या है और किन किन आचारोंके पालन करनेसे मुमुक्षु शिष्य आत्मज्ञान लाभ करके मुक्त हो सकता है ? ॥ ४६-४८ ॥

श्रीमहादेव बोले

शिष्य कुलीन शुद्धात्मा और पुरुषार्थ परायण होना चाहिये] वह अधीतवेद हो, कुशल (चतुर) हो, कामी न हो, प्राणियोंका हितेच्छु हो, आस्तिक हो, प्रवञ्चक न हो ॥ ४९ ॥ स्वधर्म्मनिरत हो, भक्तिपूर्व्वक माता पिताके हित में स्थित हो, मन वचन और शरीर तथा कर्म्मोंसे गुरुसेवापरायण हो ॥५०॥ गुणसम्पन्न हो, गुरुभक्त हो, धर्म्मादिसम्पन्न

शिष्यस्तु स गुणैर्युक्तो गुरुभक्तिरतः सदा ।
धर्म्मकामादिसंयुक्तो गुरुमन्त्रपरायणः ॥५१॥
सत्यबुद्धिर्गुरोर्मन्त्रे देवपूजनतत्परः ।
गुरूपदिष्टमार्गे च सत्यबुद्धिरुदारधीः ॥५२॥
अलुब्धः स्थिरगात्रश्च आज्ञाकारी जितेन्द्रियः ।
एवंविधो भवेच्छिष्य इतरो दुःखकृद्गुरोः ॥५३॥
शरीरमर्थं प्राणांश्च गुरुभ्यो यः समर्प्पयन् ।
गुरुभिः शिष्यते योगं स शिष्य इति कथ्यते ॥५४॥

हो, धर्म्मादिसम्पन्न हो, गुरुदत्त मन्त्रके जपादिमें प्रवृत्त हो ॥ ५१ ॥ गुरुदत्त मन्त्रमें श्रद्धालु हो, देवपूजापरायण हो, गुरूपदिष्टमार्गमें सत्यबुद्धि हो, उदार हो ॥ ५२ ॥ लोभी न हो, शरीर जिसका चञ्चल न हो, गुरुका आज्ञाकारी हो, जितेन्द्रिय हो, इसप्रकारका शिष्य होना चाहिये। इससे विपरीत गुणका होनेपर गुरुको दुःख देनेवाला वह होगा ॥ ५३ ॥

गुरुकेलिये शरीर, अर्थ और प्राणोंतकका अर्पण करके गुरुसे शिक्षा प्राप्त करता है, इसी कारण शिष्य कहा जाता है ॥५४ ॥ शिष्यको गुरुके सम्मुख दीर्घ दण्डाकार होकर प्रणाम करना उचित है; और असंकुचित चित्तसे

दीर्घदण्डवदानम्य सुमना गुरुसन्निधौ ।
आत्मदाराऽऽदिकं सर्वं गुरवे च निवेदयेत् ॥५५॥
आसनं शयनं वस्त्रं वाहनं भूषणाऽऽदिकम् ।
साधकेन प्रदातव्यं गुरोः सन्तोषकारणात् ॥५६॥
गुरुपादोदकं पेयं गुरोरुच्छिष्टभोजनम् ।
गुरुमूर्त्तेः सदा ध्यानं गुरुस्तोत्रं सदा जपेत् ॥५७॥
ऊर्ध्वं तिष्ठेद् गुरोरग्रे लब्धाऽनुज्ञो वसेत् पृथक् ।
निवीतवासा विनयी प्रह्वस्तिष्ठेद् गुरौ परम् ॥५८॥

अपनी आत्मा, स्त्री, पुत्र, धन आदिको गुरुके अर्पण करना उचित है ॥ ५५ ॥ शिष्य साधक होकर अर्थात् गुरुदीक्षा ग्रहण करके गुरुके प्रीत्यर्थ आसन, शय्या, वस्त्र, वाहन और भूषणआदि उनको अर्पण करे ॥ ५६ ॥ गुरका चरणामृत पान, गुरु उच्छिष्ट भोजन, सर्वदा गुरु मूर्ति ध्यान और सदा गुरुस्तव पाठ करना शिष्यको उचित है ॥ ५७ ॥ गुरुके सम्मुख शिष्यको खड़ा रहना उचित है, पश्चात् गुरु-आज्ञा ग्रहण करके पृथक् आसनपर बैठना युक्तियुक्त है; गुरुके सन्मुख शिष्यको अपना शरीर वस्त्रसे आच्छादित कर विनयी और भययुक्त ही अवस्थान करना उचित है ॥ ५८॥ गुरुके खड़े होने-पर शिष्यको उसी क्षण खड़ा होना उचित है, पुनः

गुरौ तिष्ठति तिष्ठेच्च उपितेऽनुज्ञया वसेत् ।
सेवेताऽङ्घ्री शयानस्य गच्छन्तश्चाऽप्यनुव्रजेत् ॥५९॥
शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ।
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥६०॥
नित्यमुद्रितपाणिः स्यात् साध्वाचारः सुसंयतः ।
आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥६१॥
हीनान्नवस्त्रवेशः स्यात् सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत् प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ॥६२॥

गुरुके उपवेशन करनेपर उनकी आज्ञा लेकर बैठना उचित है, गुरुके शयन करनेपर शिष्य उनकी चरण-सेवा करे और गुरुके गमन करनेपर उनके पश्चात् गमन करना उचित है ॥ ५९ ॥ शिष्यको उचित है कि, वह अपने शरीर, वचन, बुद्धि, चक्षुआदि इन्द्रियगण और मनको संयम कर श्रीगुरुदेवके मुखारविन्दको ओर देखता हुआ हाथ जोड़ कर खड़ा रहे ॥ ६० ॥ शिष्यको उचित है कि, वह सदाचार-सम्पन्न होकर शरीर इन्द्रियादिको संयम करता हुआ हाथ जोड़कर सदा गुरुके सम्मुख खड़ा रहे; और जब वे निज मुखसे कहें कि, बैठो तभी उपवेशन करे ॥ ६१ ॥ शिष्य जब गुरुके समीप जाय, तो गुरुसे हीन अन्न उसको भोजन करना उचित है; और उनके पहननेके

दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात् क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत् ।
परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् ॥६३॥
नीचं शय्यासनं चाऽस्य सर्व्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥६४॥
चापल्यं प्रमदागाथामहंकारं च वर्ज्जयेत् ।
नापृष्टो वचनं किंचिद् ब्रूयान्नापि निषेधयेत् ॥६५॥

अपकृष्ट वस्त्र अलंकारआदि उसको धारण करना उचित है; शिष्यको गुरुसे पहले शय्या त्याग करना और गुरुसे पीछे शय्यापर शयनार्थं जाना उचित है ॥ ६२ ॥ शिष्यको उचित है कि, गुरुका कोई दुष्कार्य प्रकाश न करे, गुरुके कुपित होनेपर उनको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करे और अन्य पुरुष यदि गुरु-निन्दा करता हो, तो उसको श्रवण न करे ॥ ६३ ॥ शिष्यको उचित है कि, गुरुके समीप नीची शय्यापर शयन करे, नीचे आसनपर उपवेशन करे और उनके सम्मुख यथेष्टासन न हो; अर्थात् गुरुके सम्मुख हाथ पैरआदि फैला कर यथेच्छासे न बैठे ॥ ६४ ॥ शिष्यको गुरुके सम्मुख चपलता और नारी–सम्बन्धी कथन अनुचित है । अहंकार त्याग करना उचित है, गुरु से बिना पूछे कोई बात करनी उचित नहीं है और गुरुके किसी कार्यको निषेध करना भी उचित नहीं है ॥ ६५ ॥ सर्वदा गुरु–मूर्त्ति ध्यान, सर्वदा गुरु–नाम जप और गुरु–आज्ञा

गुरुमूर्तिं स्मरेन्नित्यं गुरुनाम सदा जपेत् ।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यं न भावयेत् ॥६६॥
गुरुरूपे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः ।
जात्याश्रमयशोविद्याविचगर्व्वं परित्यजेत् ॥६७॥
गुरुवक्त्रे स्थिता विद्या गुरुभक्त्याऽनुलभ्यते ।
तस्मात् सर्वंप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरु ॥६८॥

पालन शिष्यको करना उचित है; और गुरुके सिवा और किसीका चिन्तन करना अनुचित है ॥ ६६ ॥ गुरु–मुखस्थित परब्रह्मतत्त्व गुरुप्रसादसे ही प्राप्त हुआ करता है, इस कारण अपने आश्रम, विद्या और जातितत्व-अभिमान और कीर्ति-अभिमान आदिको त्याग करके गुरु-शरणागत होना ही उचित है; अर्थात् "मैं उच्च वंशका हूँ, संसार में मेरी ऐसी कीर्ति है" इत्यादि अहंकारभावोंको त्याग करके सदा गुरुको हीं आश्रय समझता रहे ॥ ६७ ॥ केवल गुरु–भक्ति द्वारा ही गुरु-मुखस्थिता परमा विद्या; अर्थात् जिस विद्याद्वारा ब्रह्मपद प्राप्त होता है, वह विद्या प्राप्त हो सकती है, इस कारण पूर्ण यत्नके साथ गुरुदेवको आराधना करना उचित है ॥ ६८ ॥ गुरुके पीछे भी गुरुका अधूरा नाम अर्थात् उपाधिसे वर्जित नाम उच्चारण करना

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।
न च वाऽस्यानुकुर्व्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥६९॥
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वाऽपि प्रवर्त्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥७०॥
परिवादात् खरो भवेत् श्वा वै भवति निन्दकः ।
परिभोक्ता भवेत्क्रमिः कीटो भवति मत्सरी ॥७१॥
गुरोः शय्याऽऽसनं यानं पादुकोपानत्पीठकम् ।
स्नानोदकं तथा छायां कदापि न विलङ्घयेत् ॥७२॥

उत्तम शिष्यको कभी उचित नहीं है, गुरुदेवके चलने, कहने और कार्य करनेआदिका अनुकरण उचित नहीं है ॥ ६९ ॥ जहाँ गुरुका प्रतिवाद अर्थात् साक्षात्में दोष वर्णन, निन्दा अर्थात् असाक्षात्में दोष वर्णनआदि अकीर्ति कथन हो, वहाँ शिष्यको उचित है कि, अपने हाथद्वारा कानोंको बन्द करले, अथवा वहाँसे उठकर स्थानान्तरमें चला जाय ॥ ७० ॥ शिष्य यदि गुरु--वाक्यका प्रतिवाद करे, तो वह परजन्म में गर्दभ, यदि निन्दा करे, तो कुक्कुर, यदि अन्यायरूपसे गुरुका धन भोग करे, तो कृमि और यदि गुरु का स्वयं द्वेषी हो, तो कीट होता है ॥ ७१ ॥ शिष्यको उचित है कि, गुरु-शय्या, आसन, यान, काष्ठ-

गुरोरग्रे पृथक् पूजामौद्धत्यं च विवर्ज्जयेत् ।
दीक्षां व्याख्यां प्रभुत्वं च गुरोरग्रे परित्यजेत् ॥७३॥
ऋणदानं तथाऽऽदानं वस्तूनां क्रयविक्रयम् ।
न कुर्य्यादगुरुणा सार्द्धं शिष्यो भूत्वा कदाचन ॥७४॥
पुत्रैश्च पूजितस्तातः शिष्यैश्च पूजितो गुरुः ।
आज्ञया कुरुते कर्म्म पुत्रः शिष्यश्च भृत्यवत् ॥७५॥
न प्रेरयेत् गुरुं तातं पुत्रः शिष्यश्च कर्मसु ।
पित्रे च गुरवे नित्यं सर्वस्वं च समर्पयेत् ॥७६॥

पादुका, चर्म-पादुका, पीढ़ी, स्नानीय-जल और छाया उल्लङ्घन न करे ॥ ७२ ॥ गुरुके सम्मुख गुरुके सिवाय और किसीकी पूजा, गुरुके सम्मुख धृष्टता प्रकाश, उपदेश देना, शास्त्र व्याख्या करना और प्रभुत्व प्रकाश करना शिष्यको उचित नहीं है ॥ ७३ ॥ शिष्य होकर गुरुके साथ ऋणदान, ऋणग्रहण और द्रव्य-सम्बन्धी क्रय-विक्रयआदि कार्य करना उचित नहीं है ॥ ७४ ॥ पुत्रको पिताकी पूजा और शिष्यको गुरुकी पूजा करना उचित है; पुत्रको और शिष्य को उचित है कि, वे भृत्यकी नाईं उनकी आज्ञाका पालन करें ॥ ७५ ॥ पुत्र पिताको और शिष्य गुरुको कभी किसी कार्यमें न नियुक्त करे; उचित है कि, पुत्र पिताको

स च शिष्यःस च ज्ञानी य आज्ञां पालयेद् गुरोः।
न क्षेमं तस्य मूढस्य यो गुरोरवचस्करः ॥७७॥
गुरोर्हितं प्रकर्तव्यं वाङ्मनः कायकर्मभिः।
अहिताऽऽचरणाद् देवि! विष्ठायां जायते कृमिः ॥७८॥
यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्य्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥७९॥

और शिष्य गुरुको सर्वस्व समर्पण कर देवे ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य विना विचार करते हुए गुरुकी आज्ञा पालन किया करता है वही यथार्थमें शिष्य है और वही यथार्थ में ज्ञानी हैं; और जो गुरु-वाक्यमें अश्रद्धा करता है, उस मूढका कभी मङ्गल नहीं होता ॥ ७७ ॥ हे देवि ! शिष्यको उचित है कि, वाक्य, मन, शरीर और कर्म-द्वारा गुरुका हित अनुष्ठान करे, जो शिष्य गुरु-अहिताचारी होता है, वह दूसरे जन्म में विष्ठा-कीट होकर जन्म ग्रहण करता है ॥ ७८ ॥ जैसे कोई मनुष्य खनित्र यन्त्र द्वारा मृत्तिका खनन करते करते जल प्राप्त कर लेता है, वैसे ही जो शिष्य गुरुसेवामें रत रहता हैं, वह गुरुकी सारी विद्या लाभ करनेमें समर्थ हो जाता है ॥ ७९ ॥ जो ब्राह्मण मृत्यु समय पर्यन्त श्रीगुरु-सेवामें अनुरक्त रहता है, वह देहान्तके पश्चात् ब्रह्मलोकमें

आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् ।
स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥८०॥

गमन करता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥ ८० ॥

श्रीमहादेवी उवाच

हे विश्वात्मन्! महायोगिन्! दीनबन्धो! जगद्गुरो!।
त्रितापाद्रक्षितुं जीवान्नेतुं मुक्तेः पदं तथा ॥८१॥
योगमार्गप्रचारोऽत्र गुरुभिर्यैः प्रकाशितः ।
तल्लक्षणानि भेदांश्च कृपया वद मे प्रभो! ॥८२॥

श्रीमहादेवी बोलीं

हे योगियोंके ईश्वर! हे विश्व के आत्मा! हे जगद्गुरो! जीवको त्रितापसे बचाने और मुक्तिपदमें पहुँचानेकेलिये आपने जो योगमार्गका प्रचार गुरुके द्वारा जगत्में प्रकाशित किया है, उसके कितने भेद हैं और उनके लक्षण क्या हैं? सो वर्णन करके मुझे कृतकृत्य कीजिये ॥८१-८२॥

श्रीमहादेव उवाच

मन्त्रयोगो लयश्चैव राजयोगो हठस्तथा ।
योगश्चतुर्विधः प्रोक्तो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥८३॥
नामरूपात्मिका सृष्टिर्यस्मात्तदवलम्बनात् ।
बन्धनान्मुच्यमानोऽयं मुक्तिमाप्नोति साधकः ॥८४॥
तामेव भूमिमालम्ब्य स्खलनं यत्र जायते ।
उत्तिष्ठति जनस्सर्वोऽध्यक्षेणैतत्समीक्ष्यते ॥ ८५॥

श्रीमहादेवजी बोले

तत्त्वदर्शी योगियों ने मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग इसप्रकारसे चारप्रकारका योग वर्णन किया है॥८३॥ सृष्टि नाम-रूपात्मक होनेके कारण नाम रूपके अवलम्बनसे ही साधक सृष्टिके बन्धनसे अतीत होकर मुक्तिपद प्राप्त कर सकता है ॥ ८४ ॥ जहाँ मनुष्य गिरता है, उसी भूमिके अव-

---

टिप्पणी—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग ये चार प्रकारकी पृथक्-पृथक् साधन प्रणालियाँ हैं। सब सम्प्रदायके उपासकोंकेलिये ही सब साधन उपकारी हैं। केवल पृथक्-पृथक् प्रकारके अधिकारियोंके लिये ये पृथक्-पृथक् योग-साधन मार्ग बताये गये हैं। गुरुगण इन चारों प्रकारके योगसाधनके रहस्यको जानते हैं और जैसा शिष्य अधिकारी होता है, वैसा ही उपदेश दिया करते हैं ॥८३॥

नामरूपात्मकैर्भावैर्वध्यन्ते निखिला जनाः ।
अविद्याकलिताश्चैव तादृक्प्रकृतिवैभवात् ॥८६॥
आत्मनस्सूक्ष्मप्रकृतिम्प्रवृत्तिञ्चानुसृत्य वै ।
नामरूपात्मनोश्शब्द भावयोरवलम्बनात् ॥
यो योगः साध्यते सोऽयं मन्त्रयोगः प्रकीर्त्तितः ।८७॥
प्राणापाननादबिन्दुजीवात्मपरमात्मनाम् ।
मेलनाद्घटते यस्मात्तस्माद्वै घट उच्यते ॥८८॥
आमकुम्भमिवाम्भस्थं जीर्यमाणं सदा घटम् ।
योगानलेन संदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥८९॥

लम्बनसे पुनः उठ सकता है ॥ ८५ ॥ नाम-रूपात्मक विषय जीवको बन्धन-युक्त करते हैं, नाम-रूपात्मक प्रकृति-वैभव जीवको अविद्यासे ग्रास करते रहते हैं ॥ ८६ ॥ सुतरां अपनी-अपनी सूक्ष्म प्रकृति और प्रवृत्तिकी गतिकेअनुसार नाममय शब्द और भाव-मय रूपके अवलम्बनसे जो योगसाधन किया जाय, उसको मन्त्रयोग कहते हैं ॥ ८७ ॥ प्राण, अपान, नाद, बिन्दु और जीवात्मा परमात्माके संयोगसे बनता है, इसकारण उसे घट कहते हैं ॥ ८८ ॥ जलमें स्थित कच्चे घड़ेके समान नाश होते हुए घटकी सदा योग-रूपी अग्निसे पकाकर घटशुद्धि करनी चाहिये ॥ ८९॥

घटयोगसमायोगाद्धठयोगः प्रकीर्त्तितः ।
मन्त्राद्धठेन सम्पाद्यो योगोऽयमिति वा प्रिये ! ॥
हठयोग इति प्रोक्तो हठाज्जीवशुभप्रदः ॥९०॥
हठयोगेन प्रथमं जीर्य्यमाणामिमां तनुम् ।
द्रढयन्सूक्ष्मदेहं वै कुर्य्याद्योगयुजं पुनः ॥९१॥
स्थूलः सूक्ष्मस्य देहो वै परिणामान्तरं यतः ।
कादिवर्णान्समभ्यस्य शास्त्रज्ञानं यथाक्रमम् ॥९२॥
यथोपलभ्यते तद्वत्स्थूलदेहस्य साधनैः ।
योगेन मनसो योगो हठयोगः प्रकीर्त्तितः ॥९३॥

घटका योगकेसाथ सम्बन्ध होनेसे हठयोग कहा जाता है अथवा मन्त्रयोगकी अपेक्षा यह योग हठसे सम्पादन किया जाता है, इसी कारण हे प्रिये ! इसको हठयोग कहते हैं। यह शीघ्र जीव-कल्याणकारी है ॥ ९० ॥ नाश होनेवाले इस शरीरको पहले हठयोगसे दृढ करके फिर सूक्ष्म शरीरको योगयुक्त करे ॥ ९१ ॥ स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का परिणाममात्र है। जैसे कादि वर्णोंका अभ्यास करके यथाक्रम शास्त्र-ज्ञान प्राप्त होता है, उसीप्रकार स्थूलदेहके साधनोंसे सूक्ष्म शरीरका जो योगसाधन है, वही हठयोग है ॥ ९२-९३॥ ब्रह्मशक्ति प्रकृतिसे उत्पन्न होनेके

ब्रह्माण्डपिण्डे सदृशे ब्रह्मप्रकृतिसम्भवात् ।
समष्टिव्यष्टिसम्बन्धादेकसम्बन्धगुम्फिते ॥९४॥
ऋषिदेवाश्च पितरो नित्यं प्रकृतिपूरुषौ ।
तिष्ठन्ति पिण्डे ब्रह्माण्डे ग्रहनक्षत्रराशयः ॥९५॥
पिण्डज्ञानेन ब्रह्माण्डज्ञानं भवति निश्चितम् ।
गुरूपदेशतःपिण्डज्ञानमाप्त्वा यथायथम् ॥९६॥
ततो निपुणया युक्त्या पुरुषे प्रकृतेर्लयः ।
लययोगाऽभिधेयः स्यात् कृतः शुद्धैर्महर्षिभिः ॥९७॥
भवन्ति मन्त्रयोगस्य षोडशाङ्गानि निश्चितम् ।
यथा सुधांशोर्जायन्ते कलाः षोडश शोभनाः ॥९८॥

कारण ब्रह्माण्ड और पिण्ड समान हैं और समष्टि व्यष्टि सम्बन्धसे एक सम्बन्धमें गुम्फित हैं ॥ ९४ ॥ ब्रह्माण्डकीतरह पिण्डमें भी ऋषि, देवता, पितर, प्रकृति, पुरुष, ग्रह, नक्षत्रादि सब नित्य स्थित हैं ॥ ९५ ॥ पिण्डके ज्ञानसे ब्रह्माण्डका ज्ञान अवश्यही हो जाता है। गुरूपदेशसे पिण्ड ज्ञानको यथावत् प्राप्त करके तब सुकौशल पूर्ण युक्तिसे पुरुषमें प्रकृतिका जो लय करता है, उसको लययोग महर्षि लोग कहते हैं ॥ ९६-९७ ॥ मन्त्रयोग सोलह अङ्गोंसे सुशोभित है, जैसे चन्द्रमा सोलह कलाओंसे

भक्तिः शुद्धिश्चाऽऽसनञ्च पञ्चाङ्गस्यापि सेवनम् ।
आचारधारणे दिव्यदेशसेवनमित्यपि ॥९९॥
प्राणक्रिया तथा मुद्रा तर्पणं हवनं बलिः ।
याजो जपस्तथा ध्यानं समाधिश्चेति षोडश ॥१००॥
षट्कर्माऽऽसनमुद्राःप्रत्याहारं प्राणसंयमश्चैव ।
ध्यानसमाधी सप्तैवाङ्गानि स्युर्हठस्य योगस्य ॥१०१॥
अङ्गानि लययोगस्य नवैवेति पुराविदः ।
यमश्च नियमश्चैव स्थूलसूक्ष्मक्रिये तथा ॥१०२॥
प्रत्याहारो धारणा च ध्यानञ्चापि लयक्रिया ।
समाधिश्च नवाङ्गानि लययोगस्य निश्चितम् ॥१०३॥

सुशोभित है ॥ ९८ ॥ भक्ति, शुद्धि, आसन, पञ्चाङ्ग-सेवन, आचार, धारणा, दिव्यदेशसेवन, प्राणक्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन, बलि, योग, जप, ध्यान और समाधि, मन्त्रयोगके ये षोडश अङ्ग हैं ॥९९-१००॥ षट्कर्म्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि ये सात हठयोगके अङ्ग हैं ॥ १०१ ॥ यम, नियम, स्थूलक्रिया सूक्ष्मक्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया और समाधि ये नव लययोगके अङ्ग हैं ॥ १०२-१०३ ॥ अध्यात्मभावसे ही मन्त्र-योगके ध्यानोंका आविर्भाव हुआ है। गम्भीर, अती-न्द्रिय, नाना वैचित्र्यपूर्ण व परमानन्दमय भावराज्यमें

परानन्दमये भावेऽतीन्द्रिये च विलक्षणे ॥१०४॥
भ्रमद्भिः साधकश्रेयो वाञ्छद्भिर्योगवित्तमैः।
उपासनां पञ्चविधां ज्ञात्वा साधकयोग्यताम् ॥१०५॥
मन्त्रध्यानं हि कथितमध्यात्मस्यानुसारतः।
वेदतन्त्रपुराणेषु मन्त्रशास्त्रप्रवर्त्तकैः ॥१०६॥
वर्णितं श्रेय इच्छद्भिर्मन्त्रयोगपरस्य वै।
ध्यानानां वै बहुत्वेऽपि तत्प्रोक्तं पञ्चधैव हि ॥
तेषां भावमयत्वेन समाधिरधिगम्यते ॥१०७॥
मन्त्रयोगो हठश्चैव लययोगः पृथक् पृथक्।
स्थूलंज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानं तु त्रिविधं विदुः॥१०८॥

भ्रमण करते हुए पञ्चोपासनाके अधिकारानुसार विभिन्न साधकोंकेलिए विभिन्न प्रकार अध्यात्मभाव-पुञ्जके आदर्शपर मन्त्रयोग-ध्यान विधिबद्ध हुए हैं। आत्मतत्त्ववेत्ता महर्षियोंने मन्त्रयोगियोंके कल्याणार्थं वेद पुराण और तन्त्रोंमें अनेक रूपोंका वर्णन किया है। वे सब ध्यान बहुल होनेपर भी पञ्चोपासना-केअनुसार पञ्च श्रेणीमें विभक्त हैं। सब ध्यान ही हैं॥ १०४–१०७॥ मन्त्रयोग, हठयोग और लययोग, इनका पृथक्-पृथक् क्रमशः स्थूलध्यान, ज्योतिर्ध्यान,

स्थूलं मूर्त्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं भवेत् ।
बिन्दुं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता ॥१०९॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुता मनसि स्थिता ।
तत्साहाय्यात्साध्यते यो राजयोग इति स्मृतः ॥११०॥
मन्त्रे हठे लये चैव सिद्धिमासाद्य यत्नतः ।
पूर्णाधिकारमाप्नोति राजयोगपरो नरः ॥१११॥
समाधिर्मन्त्रयोगस्य महाभाव इतीरितः ।
हठस्य च महाबोधः समाधिस्तेन सिध्यति ॥
प्रशस्तो लययोगस्य समाधिर्हि महालयः ॥११२॥

और बिन्दुध्यान है ॥ १०८ ॥ स्थूलध्यान मूर्त्तिमय है, ज्योतिर्ध्यान तेजोमय है और बिन्दुध्यान बिन्दुमय ब्रह्म है। वहाँ कुलकुण्डलिनी परदेवता है ॥ १०९ ॥ सृष्टि, स्थिति और लयका कारण मनमें स्थित है। उस मनकी सहायतासे जो योगसाधन किया जाय, वह राजयोग कहलाता है ॥ ११० ॥ मन्त्रयोग, हठयोग और लययोग इनमेंसे किसीमें भी यत्नपूर्वक सिद्धि (पूर्णता) प्राप्त करके राजयोग साधन करने वाला मनुष्य पूर्णाधिकारको प्राप्त होता है ॥ १११ ॥ मन्त्रयोगकी समाधि महाभाव, हठयोगकी महाबोध और लययोगकी समाधि महालय नामसे अभिहित

विचारबुद्धेः प्राधान्यं राजयोगस्य साधने।
ब्रह्मध्यानं हि तद्ध्यानं समाधिर्निर्विकल्पकः।
तेनोपलब्धसिद्धिर्हि जीवन्मुक्तः प्रकथ्यते ॥११३॥
उपलब्धमहाभावा महाबोधाऽन्विताश्च वा।
महालयं प्रपन्नाश्च तत्त्वज्ञानाऽवलम्बतः ॥११४॥
योगिनो राजयोगस्य भूमिमासादयन्ति ते।
योगसाधनमूर्द्धन्यो राजयोगोऽभिधीयते ॥११५॥

श्रीमहादेवी उवाच

योगेश ! जगदाधार ! कतिधोपासना च के।
तद्विधेर्भगवन् ! भेदा मुक्तिमार्गप्रदर्शिनः ॥११६॥

होती है ॥ ११२ ॥ राजयोगके साधनमें विचारबुद्धिकी प्रधानता है और उसका ध्यान ब्रह्मध्यान कहलाता है और निर्विकल्प समाधि उसकी समाधि है। उस समाधिको प्राप्त होकर योगी जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ११३ ॥ महाभावको प्राप्त मन्त्रयोगी, महाबोधको प्राप्त हठयोगी, महालयको प्राप्त लययोगी ये सब ही तत्त्वज्ञानके अवलम्बनसे राजयोगकी भूमिको प्राप्त होते हैं। योगसाधनोंमें जो परम प्रधान है, वह राजयोग नामसे अभिहित होता है ॥ ११४-११५ ॥

श्रीमहादेवी बोलीं—

हे योगेश्वर ! हे जगदात्मन् ! उपासना कितने

तस्याः के दिव्यदेशाश्च दिव्यभावेन भास्वराः ।
तत्सर्व्वं कृपया नाथ ! वदस्व वदतां वर ! ॥११७॥

श्रीमहादेव उवाच

सगुणो निर्गुणश्चाऽपि द्विविधो भेद ईर्य्यते ।
उपासनाविधेर्देवि ! सगुणोऽपि द्विधा मतः ॥११८॥
सकामोपासनायाश्च भेदा यद्यपि नैकशः ।
परन्त्वनन्यभक्तानां जनानां मुक्तिमिच्छताम् ॥११९॥
भेदत्रितयमेवैतद्रहस्यं देवि ! गोपितम् ।
वक्ष्ये गुप्तरहस्यं तद्भवतीं भाग्यशालिनीम् ॥
समाहितेन शान्तेन स्वान्तेनैवाऽवधार्य्यताम् ॥१२०॥

प्रकारकी होती है ? मुक्ति-पथ-प्रदर्शक उपासनाविधिके भेद क्या क्या हैं और उपासनाके दिव्यदेश क्या क्या हैं ? सो वर्णन करके मुझे सफल-मनोरथ कीजिये ॥ ११६–११७ ॥

श्रीमहादेव बोले—

उपासनाके दो भेद हैं । यथा--निर्गुण उपासना और सगुण उपासना । सगुण उपासना दो प्रकारकी है ॥ ११८ ॥ यद्यपि सकाम उपासनाके और भी अनेक भेद हैं परन्तु मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले अनन्य भक्तके लिये केवल ये तीन ही भेद हैं । यह तुमसे मैं गुप्त रहस्य कह रहा हूँ । सावधान

पञ्चानामपि देवानां ब्रह्मणो निर्गुणस्य च।
लीलाविग्रहरूपाणाञ्चेत्युपास्तिस्त्रिधा मता ॥१२१॥
विष्णुः सूर्य्यश्च शक्तिश्च गणाधीशश्च शङ्करः।
पञ्चोपास्याः सदा देवि! सगुणोपासनाविधौ ॥१२२॥
एते पञ्च महेशानि! सगुणो भेद ईरितः।
सच्चिदानन्दरूपस्य ब्रह्मणो नाऽत्रसंशयः ॥१२३॥
निर्गुणोऽपि निराकारो व्यापकः स परात्परः।
साधकानां हि कल्याणं विधातुं वसुधातले ॥१२४॥
विभर्ति सगुणं रूपं त्वत्साहाय्यात्पतिव्रते!।

होकर सुनो ॥ ११९-१२० ॥ निर्गुण उपासना, सगुण पञ्चोपासना और लीला-विग्रह-उपासना, इसप्रकारसे तीन भेद माने गये हैं। शिव, गणेश, शक्ति, सूर्य्य और विष्णु ये पञ्च उपास्य सगुण रूप पञ्च सगुणोपासनाके माने गये हैं। ये पाँचों सच्चिदानन्दमय ब्रह्मके ही सगुण भेद हैं यह निस्सन्देह है ॥ १२१--१२३ ॥ परमात्मा निराकार निर्गुण और व्यापक होने पर भी साधक के कल्याणार्थ तुम्हारी सहायतासे सगुणरूप धारण किया करते हैं ॥१२४-१२५ ॥ जिसप्रकार गायके सब शरीर में रसरूपसे दुग्ध व्याप्त है परन्तु केवल स्तनके द्वारा ही वह निःसरण होता है; उसी

यथा गवां शरीरेषु व्याप्तं दुग्धं रसात्मकम् ।
परं पयोधरादेव केवलं क्षरते ध्रुवम् ॥१२६॥
तथैव सर्व्वव्याप्तोऽपि देवो व्यापक भावतः ।
दिव्यषोडशदेशेषु पूज्यते परमेश्वरः ॥१२७॥
वह्न्यम्बुलिङ्गकुड्यानि स्थण्डिलं पटमण्डले ।
विशिखं नित्ययन्त्रञ्च भावयन्त्रञ्च विग्रहः ॥१२८॥
पीठश्चाऽपि विभूतिश्च देशाः प्रोक्ता मयाऽनघे! ॥१२९॥

प्रकार परमात्मा सर्वव्यापक होनेपर भी सोलह दिव्य देशोंमें पूजे जाते हैं ॥ १२६–१२७ ॥ वह्नि, अम्बु, लिङ्ग, स्थण्डिल, कुड्य, पट, मण्डल, शिशिख, नित्ययन्त्र, भावयन्त्र, पीठ, विग्रह, विभूति, नाभि, हृदय और मूर्द्धा ये सोलह दिव्य देश कहलाते हैं। इन सोलह दिव्य देशोंमें जैसा गुरूपदेश हो साधक परमात्माकी पूजा करके मुक्तिपद प्राप्त करता है ॥ १२८–१२९ ॥ जिन अवतार शरीरोंको धारण करके

टिप्पणी—सनातनधर्मावलम्बी मूर्त्तिकी पूजा नहीं करते हैं परन्तु इन सोलह दिव्यदेशोंमें व्यापक परमात्माकी पूजा करते हैं। इन सोलह दिव्यदेशोंमें मूर्त्ति एक दिव्यदेश है ॥ १२८–१२९ ॥

यद्यच्छरीरमाश्रित्य भगवान्सर्वशक्तिमान् ।
अवतीर्णो विविधा लीला विधाय वसुधातले ॥१३०॥
जगत्पालयते देवि ! लीलाविग्रह एव सः ।
उपासनाऽनुसारेण वेदशास्त्रेषु भूरिशः ॥१३१॥
लीलाविग्रहरूपाणामितिहासोऽपि लभ्यते ।
तदुपासनकश्चाऽपि सगुणं परिकीर्त्तितम् ॥१३२॥
विष्णोः सूर्य्यस्य शक्तेश्च गणेशस्य शिवस्य च ।
गीतासु गीता ये शब्दा विष्णुशक्तिशिवादयः ॥
ब्रह्मणश्चाद्वितीयस्य सक्षात्ते चापि वाचकाः ॥१३३॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् तुम्हारी सहायतासे अनन्त लीला करके संसारकी रक्षा करते हैं, वे रूपही लीलाविग्रह कहलाते हैं। पञ्चोपासनाके अनुसार वेद और शास्त्रोंमें अनेक लीलाविग्रह धारणके इतिहास पाये जाते हैं। उनकी उपासना भी सगुण उपासना कही जाती है ॥ १३०--१३३ ॥ शिवगीता, गणेशगीता, देवगीता, सूर्य्यगीता और विष्णु-गीताके प्रतिपाद्य शिव, गणेश, देवी, सूर्य्य और विष्णु ये सब एक ही अद्वितीय परब्रह्मके ही वाचक हैं ॥ १३३ ॥ भक्तिके तीन भेद हैं, तथा--वैधी भक्ति, रागात्मिका भक्ति

भक्तिस्तु त्रिविधा ज्ञेया वैधी रागात्मिका परा ।
देवे परोऽनुरागस्तु भक्तिः सम्प्रोच्यते बुधैः ॥१३४
विधिना या विनिर्णीता निषेधेन तथा पुनः ।
साध्यमाना च या धीरैः सा वैधी भक्तिरुच्यते ॥१३५॥
ययाऽऽस्वाद्य रसान्भक्तेर्भावे मज्जति साधकः ।
रागात्मिका सा कथिता भक्तियोगविशारदैः ॥१३७॥
त्रगुण्यभेदात्त्रिविधा भक्ता वै परिकीर्त्तिताः ।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी तथा त्रिगुणतः परः ॥१३८॥

और पराभक्ति है। अपने इष्टदेवमें ऐकान्तिक अनुरागको धीर पुरुष भक्ति कहते हैं ॥१३४॥ विधि निषेधद्वारा निर्णीत और साध्यमान भक्तिको वैधी कहते हैं ॥१३५॥ भक्तिरसका आस्वादन कराकर साधकको भावविशेषमें निमग्न करानेवाली भक्ति रागात्मिका कही जाती है ॥१३६॥ परमानन्दप्रदा भक्ति पराभक्ति कहलाती है, जो योगमें कुशल योगीगणको समाधिदशामें प्राप्त होती है ॥१३७॥ भक्त त्रिगुणभेदसे त्रिविध होते हैं। यथा आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और चतुर्थ ज्ञानी जो त्रिगुणातीत

पराभक्त्यधिकारी यो ज्ञानिभक्तः स तुर्यकः ॥१३९॥
उपासकाः स्युस्त्रिविधास्त्रिगुणस्याऽनुसारतः ।
ब्रह्मोपासक एवाऽत्र श्रेष्ठः प्रोक्तो मनीषिभिः ॥१४०॥
प्रथमा सगुणोपास्तिरवताराऽर्च्चनाश्च याः ।
विहिता ब्रह्मबुद्ध्या चेदत्रैवाऽन्तर्भवन्ति ताः ॥१४१॥
सकामबुद्ध्या विहितं देवर्षिपितृपूजनम् ।
मध्यमं मध्यमा ज्ञेयास्तत्कर्त्तारस्तथा पुनः ॥१४२॥
अधमा वै समाख्याताः क्षुद्रशक्तिसमर्च्चकाः ।
प्रेताद्युपासकाश्चैव विज्ञेया ह्यधमाऽधमाः ॥
सर्व्वोपासनहीनास्तु पशवः परिकीर्त्तिताः ॥१४३॥

है ॥१३८॥ ज्ञानी भक्त ही पराभक्तिका अधिकारी हो सकता है ॥१३९॥ त्रिगुणभेदसे उपासक तीन प्रकारके होते हैं। ब्रह्मोपासक सबमें श्रेष्ठ है, ऐसा विद्वद्गणने कहा है ॥१४०॥ ब्रह्मबुद्धिसे प्रथम सगुणोपासक अर्थात् पञ्चदेवोपासक और ब्रह्मबुद्धिसे द्वितीय सगुणोपासक अर्थात् अवतारोपासक इसी श्रेष्ठ श्रेणीमें हैं ॥१४१॥ सकाम बुद्धिसे ऋषि देवता और पितरोंकी उपासना करनेवाले द्वितीय श्रेणी (मध्यम श्रेणी) के हैं। और क्षुद्र शक्तियोंकी उपासना करनेवाले तृतीय श्रेणी (अधम श्रेणी) के हैं। उपदेवता प्रेतादिककी

ब्रह्मोपासनमेवाऽत्र मुख्यं परममङ्गलम् ।
निःश्रेयसकरं ज्ञेयं सर्व्वश्रेष्ठं शुभावहम् ॥१४४॥

श्री महादेवी उवाच

यथा मे गुरुमाहात्म्यं सम्यग्ज्ञातं भवेत्प्रभो ! ।
तथा विस्तरतो नाथ ! तन्माहात्म्यमुदाहर ॥१४५॥
सद्गुरोर्महिमा देव ! सम्यग्ज्ञातः श्रुतो भुवि ।
अज्ञानतमसाऽऽच्छन्नं मनोमलमपोहति ॥१४६॥

उपासना इसी निम्न श्रेणी (अधमाधम श्रेणी) की समझी जाती है । जो किसी उपासना को नहीं करते हैं, वे पशु हैं ॥१४२–१४३॥ प्रथम श्रेणीकी उपासना अर्थात् ब्रह्मोपासना ही परम कल्याणप्रद और निःश्रेयसकर होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ है ॥ १४४ ॥

श्रीमहादेवी बोलीं—

हे नाथ ! गुरुदेवकी महिमा जिसमें मैं भली प्रकारसे समझ सकूँ, इसकारण गुरुदेवका विस्तृत माहात्म्य वर्णन करके मुझे कृतार्थ करें ॥१४५–१४६॥

टिप्पणी बिना गुरुके ज्ञानकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती, बिना तत्त्वज्ञानके भगवद्भक्ति, भगवद्दर्शन और मुक्ति प्राप्त होना

श्रीमहादेव उवाच

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१४७॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१४८॥
अज्ञानतिमिराऽन्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१४९॥
स्थावरं जङ्गमं व्याप्तं यत्किञ्चित्सचराऽचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१५०॥

श्रीमहादेवजी बोले—

गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही शिव और गुरु ही परमब्रह्म हैं; ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है। जो अखण्ड मण्डलरूप इस स्थावर जङ्गमात्मक संसारमें व्याप्त हो रहे हैं, उन परमात्माके परम पदका दर्शन जो कराते हैं; ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है। जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जनकी शलाकाद्वारा अज्ञानरूप अन्धकारसे अन्धे जीवके नेत्रोंको खोल दिया है, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १४७--१४९ ॥ आकाशके सहित जड़ और

दुर्लभ है; इस कारण श्रीगुरुदेव ही भगवद्दर्शन और भगवत्प्राप्ति-रूप मुक्ति प्राप्त करानेके कारण हैं। जब देहधारी गुरु-मूर्त्तिमें

चिन्मयं व्याप्नुवन्सर्व्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१५१॥
सर्व्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदाऽम्बुजः ।
वेदान्ताऽबुजसूर्य्यो यस्तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१५२॥
चेतनः शाश्वतः शान्तो व्योमाऽतीतो निरञ्जनः ।
विन्दुनादकलातीतस्स्मै श्रीगुरुवे नमः ॥१५३॥

चेतन जो कुछ पदार्थ हैं, उनमें जो परमात्मा व्याप्त हो रहे हैं, उनके चरणकमलोंका दर्शन जिनकेद्वारा मिला है, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १५० ॥ जो स्थावर-जङ्गमात्मकमें त्रिलोकमें व्यापित हो रहे हैं और जो शुद्ध ज्ञानमय हैं, ऐसे परमात्माके चरणकमलोंका दर्शन जिनके-द्वारा हुआ है, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १५१ ॥ जिनके चरणकमल युगल समस्त श्रुतियोंके शिरोमणि-रूपसे विराजित हैं, जो वेदान्तरूप अमल कमलके विकसित करनेमें कमलपति सूर्य हैं, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १५२ ॥ जो पुरुष चैतन्यरूप, नित्य शान्त, आकाशसे भी परे और निरञ्जन हैं, जो प्रणव ज्योति

लोकनाथ श्रीभगवान् आविर्भूत होकर शिष्यकी शक्तिकेअनुसार उपदेश दानद्वारा उसका कल्याण किया करते हैं, तब गुरुकी

ज्ञानशक्तिसमारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदाता च तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१५४॥
अनेकजन्मसंप्राप्तकर्म्मबन्धविदाहिने ।
आत्मज्ञानप्रदानेन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१५५॥
शोषणं भवसिन्धोश्च ज्ञापनं सारसम्पदः ।
गुरोः पादोदकं सम्यक् तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१५६॥

और कलासे अतीत है, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥१५३॥ जो ज्ञान-शक्तिकी पूर्णताको पहुँचे हुए हैं और तत्त्वरूप मालासे विभूषित हैं और भोग और मोक्ष प्रदान करनेमें समर्थ हैं ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १५४ ॥ जो आत्मज्ञानदानद्वारा बहु जन्मजन्मान्तरके कर्म्मरूप बन्धनको दग्ध किया करते हैं, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥१५५॥ जिनके पादोदक पान करनेसे पूर्णरूपेण भवसमुद्र सूख जाता है और तत्त्वज्ञानरूप सारवान् सम्पत्तिकी प्राप्ति हो जाती है, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥१५६॥

और श्रीभगवान्‌की एकता स्थापित हुई, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। श्रीगुरुदेव ही मुक्तिदाता हैं; श्रीगुरु महाराज ही मूर्तिमान् ब्रह्म हैं; यही देव का सिद्धान्त है ॥१४७-१५६॥

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः ।
तत्त्वज्ञानात्परं नाऽस्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१५७॥
मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः ।
मदात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥१५८॥
गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम् ।
गुरोः परतरं नाऽस्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१५९॥

तत्त्व अर्थात् ब्रह्मज्ञान श्रीगुरुसे अधिक नहीं है। तपस्या भी श्रीगुरुसे अधिक नहीं है और जिस गुरु-तत्त्वज्ञानसे अधिक और इस संसारमें कुछ भी नहीं है, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १५७ ॥ मेरे नाथ ही जगत्के श्रीनाथ ईश्वर हैं, मेरे श्रीगुरु ही जागद्गुरु हैं, मेरा आत्मा ही जगत्के सब प्राणियोंका आत्मा है, सो ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १५८ ॥ गुरु ही सबके आदि है, उनसे आदि कोई भी नहीं हैं, गुरु

टिप्पणी—जब श्रीगुरुद्वारा ही ब्रह्मज्ञान और साधन तप आदि की प्राप्ति होती है, तब गुरु ही सबसे अधिक हुए, श्रीगुरु-देवसे अधिक इस संसारमें कुछ भी नहीं हो सकता ॥१५७॥

टिप्पणी—जगद्गुरु ईश्वर ही गुरु हैं; गुरु एक अद्वितीय हैं; अर्थात् वह एकमात्र जगद्गुरु ही जगत्के समस्त जिज्ञासुगणके उपदेश दाता हैं; वह अद्वितीय परम ज्ञानमय परमात्मा समान-रूपसे सब भूतोंमें व्याप्त हैं ॥१५८॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोःपदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥१६०॥
सप्तसागरपर्य्यन्ततीर्थस्नानादिकैः फलम् ।
गुरोरङ्घ्रिपयोविन्दुसहस्रांशेन दुर्ल्लभम् ॥१६१॥
गुरुरेव जगत्सर्व्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नाऽस्ति तस्मात् सम्पूजयेद् गुरुम् ॥१६२॥

ही देवताओंके देवता हैं, गुरुसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं हैं, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १५९ ॥ गुरु-मूर्त्ति ध्यान ही सब ध्यानोंका मूल है, गुरुके चरण-कमलकी पूजा ही सब पूजाओंका मूल है, गुरुवाक्य ही सब मन्त्रोंका मूल है और गुरुकी कृपा ही भक्ति प्राप्त करनेका प्रधान कारण है ॥ १६० ॥ सप्त समुद्र पर्य्यन्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल लाभ होता है, गुरुके चरणकमलोंके एक विन्दु चरणामृत पान करनेसे उससे अधिक फल होता है, इस कारण गुरु-पादपद्म-जल सहस्र-गुणित पवित्र और दुर्ल्लभ है ॥ १६१ ॥

गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन त्रिदेवरूपोंसे समस्त विश्वमें व्याप्त हैं, गुरुकी अपेक्षा और कोई श्रेष्ठ नहीं है, इस कारण गुरुकी पूजा करना सदा उचित है ॥ १६२ ॥

ज्ञानं विना मुक्तिपदं लभते गुरुभक्तितः ।
गुरोः परतरं नाऽस्ति ध्येयोऽसौ गुरुमार्गिणा ॥१६३॥
गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुसदाशिवाः ।
सृष्ट्यादिकसमर्थास्ते केवलं गुरुसेवया ॥१६४॥
देवकिन्नरगन्धर्व्वाः पितरो यक्षचारणाः ।
मुनयोऽपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणाविधिम् ॥१६५॥

गुरुकेप्रति भक्ति करनेसे ज्ञानके विना भी मुक्तिपद प्राप्त हो सकता है, श्रीगुरुदेवसे परे और कुछ भी नहीं हैं, इसकारण गुरुपथावलम्बी साधकगणको ऐसे गुरुदेवका ध्यान करना उचित है ॥१६३॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता केवल एक-मात्र श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही और गुरुसेवाके फलसे ही सृष्टि, पालन और प्रलय क्रिया करनेमें समर्थ हुए हैं ॥ १६४ ॥ देवतागण, किन्नरगण, गन्धर्व्वगण, पितृगण यक्षगण, चारणगण और मुनिगण कोई भी गुरुसेवाकी विधि नहीं जानते ॥ १६५ ॥

टिप्पणी—श्रीगुरुदेवजी जब सबसे बड़े हैं, तब सेवा करने-में कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात् गुरुसेवा अतिशय कठिन है ॥१६५॥

न मुक्ता देवगन्धर्व्वाः पितरो यक्षकिन्नराः ।
ऋषयः सर्व्वसिद्धाश्च गुरुसेवापराङ्मुखाः ॥१६६॥
श्रुतिस्मृतिमविज्ञाय केवलं गुरुसेवया ।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः ॥१६७॥
गुरोः कृपाप्रसादेन आत्मारामो हि लभ्यते ।
अनेन गुरुमार्गेण आत्मज्ञानं प्रवर्त्तते ॥१६८॥

देवगण, गन्धर्व्वगण, पितृगण, यक्षगण, किन्नरगण, ऋषिगण और सब सिद्धगणके बीचमें जो कोई गुरुसेवा पराङ्मुख हो सो कदापि मुक्ति-लाभ करने समर्थ न होगा ॥१६६ ॥ जो वेद और स्मृतिआदि शास्त्र न पढ़कर और केवल गुरुसेवाद्वारा काल व्यतीत करते हैं, वे भी संन्यासी हैं; और जो लोग संन्यासी होकर गुरुसेवा नहीं करते, वे केवल वेषधारीमात्र है, १६७ ॥ केवल गुरुपथके अवलम्बनद्वारा ही आत्मज्ञानका उदय होता है ॥ १६८ ॥

टिप्पणी—इसमें कोई सन्देह नहीं कि, जगद्गुरु श्रीभगवान्की कृपासे ही जीवगण आत्माराम रूप मुक्तिपद करते हैं; और इसमें भी सन्देहमात्र नहीं कि साक्षात् भगवद्रूप श्रीगुरुदेव

सर्व्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात् ।
सर्व्वतीर्थावगाहस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥१६९॥
यज्ञव्रततपोदानजपतीर्थाऽनुसेवनम् ।
गुरुतत्त्वमविज्ञाय निष्फलं नाऽत्र संशयः ॥१७०॥
मन्त्रराजमिदं देवि! गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।
श्रुतिवेदान्तवाक्येन गुरुः साक्षात्परं पदम् ॥१७१॥

श्रीगुरुदेवकी चरण सेवा करने पर जीवात्मा सब पापोंसे मुक्त और पवित्र हो जाता है; और सब तीर्थोंमें स्नान करने से जितना फल होता है, उसको उतना फल प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १६९ ॥ गुरुतत्त्व न जानकर जो यज्ञ, व्रत, तपस्या, दान, जप और तीर्थस्नान आदि कार्य करते हैं, वह सब निष्फल होता है, इसमें कोई भी सन्देश नहीं ॥ १७० ॥ हे देवि! "गुरु" यह दोनों अक्षर सब मन्त्रोंसे श्रेष्ठ हैं; श्रुति और वेदान्तवाक्य-द्वारा यहा निश्चय किया गया है कि, गुरुही साक्षात् परम-पद हैं; अर्थात् श्रीगुरुदेव ही ब्रह्मरूप हैं ॥ १७१ ॥ गुरु

की सेवामें युक्त होकर उनके उपदेश किये हुए पथपर जो चलता है, वही आत्मज्ञान लाभकर सकता है ॥१६८॥

गुरुर्देवो गुरुर्धर्म्मो गुरुर्निष्ठा परंतपः ।
गुरोः परतरं नास्ति नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥१७२॥
धन्या माता पिता धन्यो धन्यो वंशः कुलं तथा ।
धन्या च वसुधा देवि! गुरुभक्तिः सुदुर्ल्लभा ॥१७३॥
शरीरमिन्द्रियप्राणा अर्थस्वजनबान्धवाः ।
माता पिता कुलं देवि ! गुरुरेव न संशयः ॥१७४॥

ही देवतारूप, गुरु ही धर्मरूप और गुरुमेंनिष्ठा ही परम तपस्यारूप है; इस कारण गुरुकी अपेक्षा श्रेष्ठ वस्तु कुछ भी नहीं है और गुरुतत्त्वकी अपेक्षा और श्रेष्ठ तत्त्व कुछ भी नहीं हैं ॥ १७२ ॥ हे देवि ! गुरुभक्ति दुर्ल्लभ है, जिसके हृदयमें वह भक्ति उदय हुआ करती है, उसके माता-पिता धन्य हैं, उसका वंश और कुल धन्य है और वे जिस पृथिवीमें वास करते हैं, वह पृथिवी भी धन्य है ॥ १७३ ॥ हे देवि ! शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अर्थ, स्वजन, सुहृत्, माता, पिता और कुल यह सब ही गुरुही हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥ १७४ ॥ हे देवेशि ! कोटि-

---

टिप्पणी—धर्मके साधनमें श्रीगुरुदेव ही कारण हैं, इस कारण उनकी सेवासे सर्वोत्तम फलकी प्राप्ति हुआ करती है। तीर्थादि धर्मजगत्में अद्भुत और तुरन्त फलके दाता हैं, परन्तु

आजन्मकोट्यां देवेशि ! जपव्रततपःक्रियाः ।
एतत्सर्व्वं समं देवि ! गुरुसन्तोषमात्रतः ॥१७५॥
विद्याधनमदेनैव मन्दभाग्याश्च ये नराः ।
गुरोःसेवां न कुर्व्वन्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥१७६॥
गुरुसेवा परं तीर्थमन्यत्तीर्थमनर्थकम् ।
सर्वतीर्थाश्रयं देवि ! सद्गुरोश्चरणाम्बुजम् ॥१७७॥

कोटि जन्ममें जो जप, व्रत, तपस्या और सत्क्रिया अनुष्ठान किये जाते हैं, एकमात्र श्रीगुरुदेवकी सन्तुष्टता ही से उन सबके समान फल लाभ हुआ करता है ॥ १७५ ॥ जो मनुष्यगण विद्या और धनआदिके अहंकारसे गुरुसेवा नहीं करते, मैं सत्य-सत्य ही कहता हूँ कि, उनका भाग्य मन्द है ॥ १७६ ॥ हे देवि ! गुरुसेवा ही सकल तीर्थोंकी अपेक्षा प्रधान तीर्थ है, गुरुके सम्मुख और तीर्थ वृथा हैं, सद्गुरुके पादपद्म ही और तीर्थोंके अवलम्बन हैं ॥ १७७ ॥ हे कमलानने ! हे सुरेश्वरि !

जब धर्मसाधनमें श्रीगुरुदेव ही कारण हैं, तो उनकी सेवासे जो फलकी प्राप्ति हुआ करती है, उनके समान तीर्थसेवनका फल कदापि नहीं हो सकता और इसी कारणसे गुरुचरणोंकी भक्ति विना कोई तीर्थ भी फलदानमें समर्थ नहीं होते ॥१७७॥

गुरुध्यानं महापुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
वक्ष्यामि तव देवेशि ! शृणुष्व कमलानने ! ॥१७८॥
प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ।
वराभयकरं शान्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ॥१७९॥
वामोरुशक्तिसहितं कारुण्येनावलोकितम् ।
प्रियया सव्यहस्तेन धृतचारुकलेवरम् ॥१८०॥
वामेनोत्पलधारिण्या रक्ताऽऽभरणभूषया ।
ज्ञानाऽऽनन्दसमायुक्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ॥१८१॥

मैं तुम्हारे निकट गुरु-ध्यान करता हूँ—श्रवण करो । इस गुरु-ध्यानसे महापुण्य लाभ होता है और एकाधारमें यह भोग और मुक्ति प्रदान किया करता है ॥ १७८ ॥ वे मस्तकस्थित सहस्रदलकमलपर विराजित हैं, उनके दो नेत्र और दो बाहु हैं और जो अपने दो हाथोंमेंसे एकमें वर और दूसरेमें अभयको धारणकर रहे हैं; ऐसे प्रशान्तमूर्त्ति गुरुदेवका नामोच्चारणपूर्वक प्रातःकालमें स्मरण करना उचित है ॥ १७९ ॥ वे दयापूर्ण दृष्टिसे समस्त संसारको देख रहे हैं; उनके वाम ऊरु-पर उनकी शक्ति देवी विराजित हैं, जो देवी रक्त अलंकारसे भूषित हैं, जिनके वाम हस्तमें कमलपुष्प है और जो अपने दक्षिण हस्तसे निजपतिके चारु कलेवरको

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१८२॥
नमोऽस्तु गुरवे तस्मै इष्टदेवस्वरूपिणे ।
यस्य वाक्यामृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञितम् ॥१८३॥

श्रीमहादेवी उवाच

मदेकहृदयाऽऽनन्द ! जगदात्मन् ! महेश्वर ! ।
उपास्यस्य रहस्यं मे माहात्म्यञ्चापि सद्गुरोः ॥१८४॥

धारणकर रही हैं; इसप्रकारके ज्ञानानन्द पूर्ण गुरुदेवका चिन्तन करना उचित है ॥ १८०-१८१ ॥ संख्या १७९ श्लोकसे लेकर १८१ तकमें जिसप्रकारका ध्यान वर्णित है, उसरीतिपर श्रीगुरुदेवका ध्यान करना उचित है; तत्पश्चात् मानस उपचारद्वारा गुरुपूजा करके पुनः उपर्युक्त श्लोक-द्वयद्वारा श्रीगुरुदेवको प्रणाम करना उचित है। इन दोनों श्लोकोंमें से पूर्वका अर्थ हो चुका है, इसकारण पुनरुक्ति नहीं की गयी। दूसरेका अर्थ यह है, इष्टदेव स्वरूप उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है कि, जिनका वाक्यामृत संसाररूप विषको नाश करता है॥ १८२–१८३ ॥

श्रीमहादेवी बोलीं—

हे जगदात्मन् ! हे महेश्वर ! हे मेरे हृदयनाथ ! आपने जो इस समय गुरुदेवका माहात्म्य और उपास्यका

वर्णितं यत्त्वया नाथ ! कृतकृत्याऽस्मि साम्प्रतम्।
भूयोऽपि श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखाज्जगदीश्वर !॥१८५॥
परतत्त्वैकरूपस्य तत्त्वातीतपराऽऽत्मनः।
समासेन स्वरूपं मे वर्णयित्वा कृपां कुरु ॥१८६॥

श्रीमहादेव उवाच

स एक एव सद्रूपः सत्योऽद्वैतः परात्परः।
स्वप्रकाशः सदा पूर्णः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥१८७॥
निर्व्विकारो निराधारो निर्विशेषो निराकुलः।
गुणातीतः सर्व्वसाक्षी सर्व्वात्मा सर्व्वदृग्विभुः ॥१८८॥

रहस्य सब कुछ वर्णन किया, उससे मैं कृतकृत्य हुई। अब जगदाधार तत्त्वातीत परमतत्त्वरूपी परमात्माका स्वरूप संक्षेपरूपसे वर्णन करके कृतार्थ कीजिये ॥ १८४–१८६ ॥

श्रीमहादेव बोले—

वह एक अद्वितीय, सत्य, नित्य, परात्पर, स्वप्रकाश, सदापूर्ण और सच्चिदानन्दरूप है ॥ १८७ ॥ वह निर्विकार, निराधार, निर्विशेष, निराकुल, गुणातीत, सर्वसाक्षी, सर्वात्मा, सबोंको देखनेवाला और व्यापक है ॥ १८८ ॥

गूढः सर्व्वेषु भूतेषु सर्व्वव्यापी सनातनः।
सर्व्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ॥१८९॥
लोकातीतो लोकहेतुरवाङ्मनसगोचरः।
स वेत्ति विश्वं सर्व्वज्ञस्तं न जानाति कश्चन ॥१९०॥
तदधीनं जगत्सर्व्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
तदालम्बनतस्तिष्ठदवितर्क्यमिदं जगत् ॥१९१॥
तत्सत्यतामुपाऽऽश्रित्य सद्वद्भाति पृथक् पृथक्।
तेनैव हेतुभूतेन वयं जाता महेश्वरि! ॥१९२॥

वह सर्वव्यापी, सनातन गूढभावसे सब जीवोंमें अवस्थित है, सम्पूर्ण इन्द्रिय शक्तियोंका प्रकाशक होने पर भी समस्त इन्द्रियोंसे रहित है ॥ १८९ ॥ वह लोकका कारण होनेपर भी लोकसे अतीत है और वह मन और वचन दोनोंसे परे है, वह सर्वज्ञ सबको जानता है परन्तु उसको कोई नहीं जानता ॥ १९० ॥ चराचरपूर्ण त्रैलोक्य उसके अधीन है। उसीके अवलम्बनसे यह अवितर्क्य विस्तृत जगत् ठहरा हुआ है ॥ १९१ ॥ यह असत्य जगत् उसीकी सत्यता पाकर सत्यके समान पृथक्--पृथक् शोभता है, हे महेश्वरी! उन्हींके द्वारा हमलोग उत्पन्न हुए हैं ॥ १९२ ॥ वही एक

कारणं सर्व्वभूतानां स एकः परमेश्वरः ।
लोकेषु सृष्टिकरणात्स्रष्टा ब्रह्मेति गीयते ॥१९३॥
विष्णुः पालयिता देवि! संहर्त्ताऽहं तदिच्छया ।
इन्द्राऽऽद्यो लोकपालाः सर्व्वे तद्वशवर्त्तिनः ॥१९४॥
स्वे स्वेऽधिकारे निरतास्ते शासति तदाज्ञया ।
त्वं पराप्रकृतिस्तस्य पूज्याऽसि भुवनत्रये ॥१९५॥
तेनान्तर्यामिरूपेण तत्तद्विषययोजिताः ।
स्वस्वकर्म्म प्रकुर्व्वन्ति न स्वतन्त्राः कदाचन ॥१९६॥

परमेश्वर सब प्राणियों का कारण है, लोकमें सृष्टि करनेके कारण वह सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा कहा जाता है ॥ १९३ ॥ हे देवि! उसीकी इच्छासे विष्णु पालन तथा मैं संहार करता हूँ, इन्द्रादिक देवता सब उसीके वश-वर्त्ती हैं ॥ १९४ ॥ और उसकी आज्ञासे अपने-अपने अधिकारोंमें रहकर जगत्‌का शासन करते हैं । तुम उसकी प्रधान प्रकृति हो। इसलिये तीनों भुवनमें तुम पूज्य हो ॥ १९५ ॥ हम उस अन्तर्यामीसे उन-उन विषयोंमें नियोजित होकर अपने-अपने कार्य्योंको करते हैं। कोई भी कभी स्वतन्त्र नहीं हैं ॥ १९६ ॥ जिसके

यद्भयाद्वाति वातोऽपि सूर्य्यस्तपति यद्भयात् ।
वर्षन्ति तोयदाः काले पुष्यन्ति तरवो वने ॥१९७॥
कालं कलयते काले मृत्योर्मृत्युर्भियो भयम् ।
वेदान्तवेद्यो भगवान्यत्तच्छब्दोपलक्षितः ॥१९८॥
सर्व्वे देवाश्च देव्यश्च तन्मयाः सुरवन्दिते ! ।
आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं तन्मयं सकलं जगत् ॥१९९॥
तस्मिँस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत् ।
तदाराधनतो देवि ! सर्व्वेषां प्रीणनं भवेत् ॥२००॥

भयसे वायु चलती है, सूर्य तपता है, मेघ वर्षते हैं और समयपर वृक्ष पुष्पित होते हैं, जो प्रलयकालमें कालको भी कवलित कर जाता है और जो मृत्युकी मृत्यु एवं भयका भी भय है ॥ १९७--१९८ ॥ जो वेदान्त-वेद्य प्रभु यत् और तत् शब्दसे उपलक्षित होता है। हे देववन्दिते ! देवि ! सम्पूर्ण देव और देवगण तथा ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्य्यन्त समस्त जगत् तद्रूप है ॥ १९९ ॥ उसके सन्तुष्ट होनेसे जगत् सन्तुष्ट और उसके तृप्त होनेसे जगत् तृप्त होता है; हे देवि ! उसीकी आराधनासे सब तृप्त होते हैं ॥ २०० ॥ जैसे

तरोर्मूलाभिषेकेण यथा तद्भुजपल्लवाः ।
तृप्यन्ति तदनुष्ठानात्तथा सर्व्वेऽमरादयः ॥२०१॥

श्रीमहादेवी उवाच

संसाररोगहृन्नाथ ! करुणावरुणाऽऽलय ! ।
गुरोर्माहात्म्यपूर्णा या गुरोर्गीता सुवर्णिता ॥२०२॥
तत्स्वाध्यायस्य माहात्म्यं फलञ्चापि विनिर्दिश ।
जीवमङ्गलमेतेन कृपातोऽतः कृपार्णव ! ॥२०३॥
सम्यग् विविच्य संवर्ण्य मां विनोदय दयामय ! ।
त्वद्दते को हि देवेश ! शिक्षां मेऽन्यो विधास्यति? ॥२०४॥

वृक्षके मूलमें सिञ्चन करनेसे उसके शाखा-पल्लव सब तृप्त होते हैं, उसीप्रकार भगवान्के अनुष्ठानसे सब देवगण तृप्त और प्रसन्न होते हैं ॥ २०१ ॥

श्रीमहादेवी बोलीं—

हे कृपानिधे ! संसार-दुःखके मेटनेवाले ! गुरु-माहात्म्य-पूर्ण गुरुगीताका जो आपने वर्णन किया, इसके पाठका क्या माहात्म्य है, सो कृपापूर्वक जावोंके कल्याणार्थ वर्णन करके मुझे सुखी करिये । हे देवेश ! आपके विना और कौन मुझे शिक्षा देगा ॥ २०२-२०४ ॥

श्री महादेव उवाच

इदं तु भक्तिभावेन पठ्यते श्रूयतेऽथवा ।
लिखित्वा वा प्रदीयेत सर्व्वकालफलप्रदम् ॥२०५॥
गुरुगीताऽभिधं देवि ! शुद्धं तत्त्वं मयोदितम् ।
भवव्याधिविनाशार्थं स्वयमेव सदा जपेत् ॥२०६॥
गुरुगीताऽक्षरैकैकं मन्त्रराजमिदं प्रिये ! ।
अनया विविधा मन्त्राःकलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२०७॥

श्रीमहादेव बाले—

इस गुरुगीताको भक्तिपूर्वक पाठ, श्रवण अथवा लिखकर दान करनेसे सकल प्रकारकी कामना पूर्ण होती हैं ॥ २०५ ॥ हे देवि ! संसाररूप रोगसे मुक्त होनेके निमित्त इस गुरुगीता नामक पवित्रतत्त्वको मैंने प्रकट किया हैं; शिष्यगणोंको उचित है कि, वे स्वयं इसका सर्वदा पाठ करें ॥ २०६ ॥ हे प्रिये ! इस गुरुगीताका एक-एक अक्षर एक-एक प्रधान मन्त्ररूप हैं; इसके सिवाय और-और मन्त्र-समूह इसके षोडश अंशके एक अंशके तुल्य भी नहीं हैं ॥ २०७ ॥ यह गुरुगीता सबप्रकारके पापोंको नाश करती है, सकल प्रकारके दारिद्रचको दूर

सर्व्वपापहरं स्तोत्रं सर्व्वदारिद्र्यनाशनम् ।
अकालमृत्युहरणं सर्व्वसंकटनाशनम् ॥२०८॥
यक्षराक्षसभूतानां चौरव्याघ्रभयापहम् ।
महाव्याधिहरञ्चैव लोकान्स्ववशमानयेत् ॥२०९॥
मोहनं सर्व्वभूतानां परं बन्धनमोचनम् ।
देवभूतप्रियकरं लोकान्स्ववशमानयेत् ॥२१०॥
मुखस्तम्भकरं नृणां सद्गुणानां विवर्द्धनम् ।
दुष्कर्म्मनाशनञ्चैव सत्कर्म्मसिद्धिदं भवेत् ॥२११॥

करती है, अकालमृत्यु निवारण करती है और सब विपदोंको नष्टकर देती है ॥ २०८ ॥ इस गुरुगीताके पाठसे यक्ष, राक्षस, भूत, चौर और व्याघ्र आदिका भय नहीं रहता, इससे महाव्याधिका नाश और सम्पत्तियोंको प्राप्ति हुआ करती है ॥ २०९ ॥ यह गुरुगीता सकल जीवों का मन मुग्ध करती है, संसारबन्धनसे मुक्तिलाभ करनेका प्रधान उपाय है और देवता व राजागणको प्रसन्न करनेवाली है, और जो मनुष्य इसका पाठ करता है, वह सकल लोकों-को अपने वशमें कर लेता है ॥ २१० ॥ यह गुरुगीता वादी-मनुष्यगण की वाक्शक्तिको निरोधक, सारे सद्गुणोंकी वर्धक, पाप-कर्मोंको विनाशक और धर्म्म कार्य्यकी फल-प्रदानकारक है ॥ २११ ॥ इस भक्तिप्रद, नवग्रह-भयनिवारक

भक्तिदं सिद्धये कार्य्यं नवग्रहभयापहम् ।
दुःस्वप्ननाशनञ्चैव सत्कर्म्मसिद्धिदं भवेत् ॥२१२॥
सर्व्वशान्तिकरं नित्यं वन्ध्यापुत्रफलप्रदम् ।
अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यदायकं परम् ॥२१३॥
आयुरारोग्यमैश्वर्य्यपुत्रपौत्रादिवर्द्धकम् ।
निष्कामतस्त्रिवारं वा जपन्मोक्षमवाप्नुयात् ॥२१४॥

गुरुगीताके पाठ करनेसे अभिलषित कार्य्य सिद्ध होते हैं, इसके पाठद्वारा दुःस्वप्नोंका दोष दूर और सत्कर्म्मका फल तुरन्त प्राप्त हुआ करता है ॥ २१२ ॥ इस गुरुगीताके पाठ करनेसे सर्वदा जीवगण विपद्‌से बच सकते हैं। इसके पाठ करनेसे वन्ध्या नारी पुत्रफल प्रसव करती है और नारीगणकी वैधव्य-यन्त्रणा दूर हो जाती है और वे परम सौभाग्यको प्राप्त हो जाती हैं ॥ २१३ ॥ कामना-शून्य होकर इस गुरुगीताको थोड़ा भी पाठ करनेसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, पुत्र और पौत्रआदिकी वृद्धि होती है और वह पाठ-कर्त्ता अनायास ही मोक्षपद प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाता है ॥ २१४ ॥ इस सन्तापहारी गुरु-गीताके पाठसे सकलप्रकारके दुःख, भय और विघ्न नष्ट हो जाते हैं; सकलप्रकारको विपत्तियोंकी शान्ति होती है और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-

सर्व्वंदुःखभयं विघ्नं नाशयेत्तापहारकम् ।
सर्व्वाबाधाप्रशमनं धर्म्मार्थकाममोक्षदम् ॥२१५॥
यो यं चिन्तयते कामं स तमाप्नोति निश्चितम् ।
कामिनां कामधेनुश्च कल्पित श्च सुरद्रुमः ॥२१६॥
चिन्तामणि श्चिन्तितस्य सर्वमङ्गलकारकः ।
जयेच्छाक्तश्च शैवश्च गाणपत्यश्च वैष्णवः ॥
सौरश्च सिद्धिदं देवि ! धर्म्मार्थकाममोक्षदम् ॥२१७॥

रूपी चतुर्वर्ग प्राप्त होता है ॥ २१५ ॥ जो मनुष्य जिस प्रकारकी कामना करके इस गुरुगीताका पाठ करता है, वह उसी फलको प्राप्त करता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। यह गुरुगीता कामीगणकेलिए कामधेनु और कल्पित कल्पवृक्षरूप है; अर्थात् सकाम होकर पाठ करनेसे इसके द्वारा कामनाकी सिद्धि होती है और निष्काम होकर पाठ करनेसे मुक्तिपदकी प्राप्ति होती है ॥ २१६ ॥ हे देवि ! यह गुरुगीता धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्ग प्रदान करती है, यह चिन्तामणिरूप होकर चिन्तन किया हुआ अर्थ प्रदान करती है और सर्वप्रकार मङ्गलोंकी कारण है। इस कारण क्या शाक्त, क्या वैष्णव, क्या शैव, क्या गाणपत्य और क्या सौर्य सबप्रकारके उपा-

संसारमलनाशार्थं भवतापनिवृत्तये ।
गुरुगीताम्भसि स्नानं तत्त्वज्ञः कुरुते सदा ॥२१८॥
देशः शुद्धः स यत्रासौ गीता तिष्ठति दुर्ल्लभा ।
तत्र देवगणाः सर्वे क्षेत्रपीठे वसन्ति हि ॥२१९॥
शुचिरेव सदा ज्ञानी गुरुगीताजपेन तु ।
यस्य दर्शनमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते ॥२२०॥

सकगण इसके ही पाठद्वारा सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं ॥ २१७ ॥ तत्त्वज्ञानी मनुष्यगण संसार-तापके विनाशार्थं और भव-दुःख निवारणार्थं इस गुरुगीतारूप तरङ्गिणीमें सदा स्नान किया करते हैं ॥ २१८ ॥ यह सुदुर्लभा गुरुगीता जिस स्थानमें रहती है, उस स्थानको परम पवित्र, सिद्ध-स्थान और पीठस्थानके तुल्य समझना उचित है; उस स्थानमें समुदाय देवतागण आकर वास किया करते हैं ॥ २१९ ॥ ज्ञानी मनुष्यगण गुरुगीताका पाठ करके सदा पवित्र रहते हैं, ऐसे पवित्र मनुष्योंके दर्शन करनेसे पुनः जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता है ॥ २२० ॥ हे चारुमुखि ! मैं पुनः पुनः कहता

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं निजधर्म्मो मयोदितः।
गुरुगीतासमो नास्ति सत्यं सत्यं वरानने ! ॥२२१॥

इति श्रीगुरुगीता समाप्ता।



हूँ कि, यह परमात्मस्वरूप स्वधर्म जो मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया, वह सत्य ही है; इस गुरुगीता के तुल्य और कोई भी पदार्थ नहीं हैं; यह वाक्य सत्य-सत्य ही जानना ॥ २२१ ॥

इति श्रीगुरुगीता समाप्ता।



